का कारण जो परब्रह्म हैं उनको बतलाने के लिए तथा स्वप्रकाश चैतन्य स्वरूप तथा माया एवं माया कार्य से अतीत जो भगवान् श्रीरामात्मक ईश्वर हैं, वे त्रिगुणात्मक माया कार्य जगत् के सर्ग स्थिति प्रलय के कारण हैं। इस बात को बतलाते हुए **'रां रामाय नमः'** इत्याकारक जो मन्त्रराज है उसका अवयव अर्थात् एक देशभूत जो **'रां'** इत्याकारक अग्नि बीज है, उस बीज के अर्थ को बतलाने के लिए उपक्रम करते हैं **'यावद्वेदार्थगर्भम्'** इत्यादि।

'रां रामाय नमः' इत्याकारक तारक मन्त्रराज के आदि में वर्तमान जो 'रां' इत्याकारक बीज है वह अनुक्षण स्वेतर प्रकाश निरपेक्ष होकर के प्रकाशित होता है। श्रुति कहती है, 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासाजगदिदं विभाति' इति। यह श्रीरामबीज कैसा है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में आचार्यजी कहते हैं-**'यावद्वेदार्थ गर्भमि ति'** इस श्रीरामबीज के गर्भकुक्षिं में अभ्यन्तर में जितने वेद के अर्थ हैं वे सब प्रविष्ट हैं। जिस प्रकार वटबीज के अन्दर में वटवृक्ष अवस्थित रहता है। उसी तरह 'रां' इस बीज के अभ्यन्तर में सकल वेदार्थ निहित है। इसलिए यह बीज-'यावद्वे दार्थगर्भितः' कहलाता है। किस तरह यावद्वेदार्थ घटितत्व है ऐसा पूछते हो तो सुनिये-यह जो गायत्री मन्त्र है जो कि सर्ववेदमयी है उसमें अनेक प्रकारक माहात्म्य विशिष्टतो सविता देव हैं। उनसे अभिन्न सूर्यमण्डल में विद्यमान भगवान् श्रीसीतारामजी ही हैं। ऐसा सनत्कुमार संहिता में कहा है-

'सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीता समन्वितम्।
नमामि पुण्डरीकाक्षममेयं गुरुतत्परम्॥' इति।

अर्थात् गायत्री मन्त्र सर्ववेदमय है। उसमें वर्णित जो सविता देव हैं वे परमात्मा श्रीराम हैं। यह सनत्कुमार संहिता से स्पष्ट होता है। और एतादृश जो श्रीरामजी हैं वे ही श्रीरामजी 'रां' बीज में 'र' शब्द से प्रतिपादित होते हैं। इस तरह से 'रां' इस बीज में यावद्वेदार्थगर्भत्व सिद्ध होता है। और भी देखिये-**'जन्माद्य स्य यतः'** इस सूत्र से प्रति प्रतिजगत्कारणीभूत अनन्त कल्याण गुणाकर जो भगवान् श्रीरामजी हैं वे ही बीज के 'र' शब्द से प्रतिपादित होते हैं। प्रकृत सूत्र के स्वरचित आनन्दभाष्य में आचार्यजी ने ऐसा ही कहा है-एतदुक्तं भवति-'यतो वा इमानि' (तै. ३।१।१) इति श्रुतिरपि सूक्ष्मचिदचिच्छरीरकस्य ब्रह्मण एव लक्षणं दर्शयति, तदेवहि

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

जगत्कारणम्' (आ.भा. १।१।२) इससे सिद्ध होता है कि बीज यावद्वेदार्थ घटित है। इसलिए आचार्यश्री ने बीज में 'यावद्वेदार्थगर्भम्' यह विशेषण दिया है।

पुनः यह श्रीराम बीज कैसा है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-'**प्रणवि**' तथा यह बीज. प्रणवि, प्रणववाला है। जो स्तूयमान हो, उपास्य हो, उसको प्रणव, ओंकार कहते हैं। तादृश प्रणववाला श्रीरामबीज है। अर्थात् वह प्रणव, ओंकार इस बीज में रहता है। इस तरह 'रां' में चार अक्षर हैं '**र. अ. आ. तथा म्**' इसमें पृषोदरादि गण पठित होने से र का **अकार** रूप परिवर्तन हो जाता है। रेफ स्थानीय अकार के साथ दोनों अकार का दीर्घ हो जाता है। तदनन्तर दीर्घाकार को उकार आदेश तथा गुण करने से **ओम्** इत्याकारक प्रणव सिद्ध होता है। अतः ओम् की प्रकृति **'रां'** होने से बीज प्रणवी कहलाता है।

पुनः यह श्रीरामबीज इस स्थावर जङ्गम सकल जगत् का उत्कृष्ट आधार-आश्रयरूप है। अर्थात् इस जगत् का वह बीज उपादानकारण है। तथा निमित्तकारण अर्थात् कर्त्ता कारण भी है। चेतन अंश को प्रधान करके तो निमित्तकारण होता है। तथा स्वशरीररूप प्रकृत्यंश को प्रधान करके उपादानकारण बनता है। अत एव परिणामी कहलाता है विशेषणांश की प्रधानता होने से, यों तो परमात्मा निर्मल ज्ञानानन्दरूप होने से किसी का उपादान नहीं है। परमात्मा चेतन सर्वशक्तिमान होने से कर्त्ता तो है ही परन्तु प्रकृति उपादान कारण भी है। इस बात को, '**प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्**' इस सूत्र में भाष्यकार ने कहा है कि-ईश्वर इस जगत् का उपादान कारण भी है। इसमें-'सदेवसोम्येदमग्रे आसीत्' बहुस्यां 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि श्रुति प्रमाण हैं। तथा श्रीरामतापनियोपनिषद् में भी कहा है-'सीतारामौ तन्मयावत्र पूज्यौ...एष योनिः सर्वस्य प्रभवाय्ययौ हि भूतानाम्' इत्यादि। इससे सिद्ध होता है कि वह श्रीरामबीज जगत् का उत्कृष्ट आधार भूत है।

तथा वह श्रीरामबीज सविन्दु है-जलविन्दु की तरह विन्दु से युक्त है। एतादृश विन्दु सहित श्रीरामबीज सकल स्थावर जङ्गम जगत् का उत्कृष्ट आधारभूत है। यह श्रुत्यादि सिद्ध है।

तथा यह श्रीरामबीज **सुव्यक्त** है अर्थात् समीचीन रूप से व्यक्त किया गया है। अर्थात् प्रकाशित हुआ है। स्थूल चराचर जगत् जिसके द्वारा सुव्यक्त है। जिस

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

तरह परिमाण से छोटा भी वट धाणा से महान् यह वटवृक्ष प्रकाशित अर्थात् व्यक्त हो जाता है । उसी तरह इस श्रीरामबीज से यह संसार वृक्ष अभिव्यक्त होता है । इसलिए संसारात्मक वृक्ष को ऊर्ध्वमूल गीता में कहा है । श्रुति भी-'ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाखा एषोऽस्वत्थः सनातनः तदेव शुक्रमित्यादि' कहती है । पुनः यह श्रीरामबीज '**श्रुतिमुनिगदितोत्कृष्टषड्व्याप्तिभेदम्**' है । अर्थात् श्रुति मुनियों के द्वारा उक्त कथित है उत्कृष्ट समीचीन नाम, रूप, यश, गुण, स्वरूप तथा मन्त्र इन छओं की व्यापकता जिसमें एतादृश यह श्रीरामबीज है । इसमें नाम की व्यापकता में यजुर्वेदीय श्रुति प्रमाण है '**न यस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद् यशः**' यथा आश्वलायन श्रुति में भी कहा है की व्यापकता तथा हि 'जपान्तेनैव शरीरेण देवता दर्शनं करोति । कलौनान्येषां भवति । यजूंषि नामेतिनामैव ब्रह्मरूपेण श्रुतय आहुः' इति । '**सदा रामोहमित्येतत्तत्तत्वतः प्रवदन्ति ये । न ते संसारिणो नूनमित्यादि ।**' तथा दिव्य मङ्गल विग्रह विशिष्ट भगवान् की रूप व्यापकता में भी श्रुत्यादि अनेक प्रमाण हैं- 'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेशः' इत्यादि । इसी तरह यश गुण स्वरूप तथा मन्त्र का व्यापकत्व श्रुति स्मृत्यादि प्रमाणित है । उनको भी जानना चाहिए । तथा यह श्रीरामबीज **रेफारूढत्रिमूर्ति** है । विष्णु ब्रह्मा तथा महेश का वाचक जो आकार अकार तथा मकार जिस श्रीरामबीज में आश्रित हैं । अर्थात् ये विष्णु प्रभृतिक देवों जिस बीज पर आधारित हैं तथा सर्गस्थिति संहार का सम्पादन करनेवाली महाशक्ति ब्रह्मा विष्णु तथा महाशक्ति जिस बीज में विद्यमान है । और जो जरायुज आण्डज स्वेदज और उद्भिज्ज भेद से विभिन्न अनेक प्रकार से भासमान सकल विश्व प्रपञ्च का आधार रूप है, अर्थात् इस ब्रह्माण्ड के चारों तरफ विद्यमान आवरण पञ्चमहाभूत महत्तत्त्व अहङ्कार तथा मूल प्रकृति से युक्त एतादृश अनन्तानन्त कोटि ब्रह्माण्ड प्रकाशित होते हैं वह सब ब्रह्माण्ड चतुर्मुख ब्रह्मा से लेकर सहस्र मुख ब्रह्मा पर्यन्त जो गुण प्रधानक केवल सर्ग क्रिया में संलग्न ब्रह्मा लोग जिस परब्रह्म परमेश्वर से अधिष्ठित हैं । एतादृश श्रीरामबीज 'रां' उपर्युक्त अनेक विशेषणों से युक्त होने के कारण सम्पूर्ण श्रुति स्मृतियों से सर्व मन्त्रों में सम्राट् की तरह श्रेष्ठ है । अर्थात् ब्रह्माण्ड अनेक हैं उन ब्रह्माण्डों में ब्रह्माण्ड का उत्पादक तथा संचालक गुण प्रधान ब्रह्मा भी अनेक हैं । उन ब्रह्माओं से उच्चारित श्रुति भी अनेक

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

हैं उन श्रुतियों में अनेक देवताओं के मन्त्र भी अनेक हैं। उन अनेक श्रुति प्रतिपादित अनेक मन्त्रों में भी श्रीरामबीज श्रेष्ठ होने से सर्वापेक्षया यह श्रीराममन्त्र उत्तमोत्तम है। अत एव चतुर्वर्ग फलप्रदायक इस श्रीराममन्त्र का ही जप करना सर्वथा श्रेयस्कर है। एतादृश मन्त्र चिन्तामणि को छोड़कर के जो अन्य मन्त्र का जप करने की इच्छा करता है वह-'**तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनतिदुर्मतिः ।**' इस न्याय विषयता का अतिक्रमण नहीं करता है। विशेष विवरण पूर्वश्लोक में देखिए ॥३॥

तत्राद्येन पदेन रेणभगवान् सीतापतिः प्रोच्यते

श्रीरामो जगतां गुणैकनिलयो हेतुश्च संरक्षकः ।

तच्छेषीपदतोऽप्यतो भगवतोऽनन्यार्हशेषत्वकम्

व्यावृत्तिस्तु सुरान्तरादिगतसत्तच्छेषताया मुहुः ॥४॥

गत प्रकरणेन श्रीराममन्त्रघटक रामिति बीजस्य समुदायार्थविस्तरेणप्रतिपादितोऽथ बीजावयवभूततत्तद्वर्णप्रतिपाद्यं तत्तदर्थमभिधातुमुपक्रमते 'तत्राद्येन पदेन' इत्यादि। तत्र विचारणीयबीजावयवभूत आद्येन प्रथमपदेन रेण रकारात्मकवर्णेन श्रीरामः रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति वा स्वाश्रितान् प्रपन्नान् चतुर्वर्ग प्रदानेन रमयति इति वा अथवा 'रामो रमयतां वरः' इतिवचनेन दशरथापत्य पुंस्त्वविशिष्टो वाऽत्र श्रीरामपदेन प्रोच्यते प्रोक्तो भवति। स च जनकात्मजालक्षणश्रिया सहितोनित्यमेवतया युक्तः 'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभेति मुनिवचनात्। एतादृशः श्रीरामो बीजस्याद्येन रेफात्मकपदेन प्रोक्तो भवतीति क्रिया सम्बन्धः। पुनः कीदृशः स तत्राह 'भगवान् देवाधिदेवोऽखिलब्रह्माण्डाधिनायको न तु वस्तुतो मनुष्यः मनुष्यवत् प्राकृतिकरूपधारणं तु प्रपन्नपरित्राणायैव स्वेच्छया न तु कारणान्तरेण। भगो विद्यते यस्य स भगवान् तदुक्तं-

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
वैराग्यस्याथमोक्षस्य षण्णां भग इतीरणा ॥'

इतिवचनेन ऐश्वर्यादिसमस्तवस्तुरूपभगपदवाच्येन नित्यसम्बन्धवात् सर्वदा यः स भगवान् तथोक्तम्,

'उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम् ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥

पुनः कीदृशो रामस्तदक्षरप्रतिपाद्यस्तत्राह 'सीतापतिः' इति सेयं श्रीसीता पृथिव्याः पुत्रीरयोनिजा विदेहस्य हलप्रवहणसमये पृथिवीमुद्भिद्य जाता सा च सर्वेश्वरश्रीरामसदृशी ।

सर्वेश्वरी यथा चाहं रामः सर्वेश्वरस्तथा ।
षड्गुणो भगवान् रामः षड् गुणाहं स्वभावतः ॥
सर्वस्याधारभूतौ च त्वावामेव हि मारुते ।
स्वे महिम्नि स्थितावावामन्याधारो न चावयोः ॥
मया विना वदन् रामं रामं विना वदंश्च माम् ।
वदत्यावां यतश्चावामभिन्नावेव सम्मतौ ॥

इति वशिष्ठसंहितोक्तेस्तस्याः पतिः स्वामी । पुनः कीदृशः श्रीरामः ? तत्राह-'गुणैकनिलयः' गुणानां शौर्यवीर्यमाधुर्यादिगुणानां प्रधानाश्रयः प्रधानं कारणम् । तत्र कारणं निमित्तकारणोपादानकारणसहकारिकारणभेदात् त्रिविधं भवति । तत्र सङ्कल्पविशिष्टरूपेण निमित्तकारणं भवति यथा घटादिकं प्रति दण्डकुलालादिकम् । सूक्ष्मजड़चेतनविशिष्टरूपेणोपादानम् । यथा घटादिकं प्रतिमृदादिद्रव्यम् । प्रकृते परमेश्वरः सहकारिकारणकालदिगाद्यन्तर्यामितया सह कारणं तत्र कालादीनां मुख्यं सहकारित्वं परमेश्वरस्य कार्यमात्रंप्रतिसहकारिकारणान्तर्यामितया तथात्वमिति । एवं च बीजस्याद्याक्षरं रेफपदवाच्यो रामो हेतुर्भवन् जगदन्तर्गतब्रह्माविष्णुशिवादिसकलचेतनानामाकाशादिसकलजड़ानां च कारणं भवतीत्यभिव्यञ्जितम् । पुनश्च स श्रीसीतानाथः, जगतां सकल प्राकृतपदार्थानां हेतुर्निदानकारणं संरक्षकश्चोत्पादयति सर्वं तदनुसर्वान् रक्षत्य पि । अन्यथा संरक्षणाभावे स्थितिकाले एव सर्वं विपद्येत संजातविनष्टघटादिवदिति । 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' इतिगीतोक्तेः । एतेन 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति' इत्यादि श्रुत्यर्थोऽभिव्यञ्जितः । अत्रार्थे श्रुत्यन्तरमपि तथाहि-'ओं भृगुर्वै वारुणिवरुणपितरमुपससार अधिहि भगवो ब्रह्मेति । सोऽब्रवीत् 'राम एव परं ब्रह्म रामादत्यन्नकिंचन, यत एते श्रीरामादेवोत्पद्यन्ते श्रीरामे एव विलीयन्ते श्रीरामे एव स्थितिं वसन्ति तस्माद्राम एव विभुः ।

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

'रामात्संजायते कामः कामाद्विश्वं प्रजायते ।
तस्माद्धनुर्धराः सर्वे द्विभुजामूलरूपिणः ॥' इत्यादि ।
'राम एव परं ब्रह्म परमात्माभिधीयते ।
रामात्परतरं नास्ति यत् किञ्चित्स्थूलसूक्ष्मकम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवाः सर्वे इन्द्रोऽग्निर्वरुणो यमः ।
सूर्यश्चन्द्रश्चखंभूमिराकाशस्त्वनिलोत्पदः ॥
सर्वे ते रामचन्द्रस्य तेजसा संप्रतिष्ठिताः ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं रामसमुद्भवम् ॥
इत्यादि पराशरस्मृतौ च । तथैव-
रामान्नाति परो देवो रामान्नास्ति परं व्रतम् ।
नहि रामात्परो योगो नहि रामात्परो मखः ॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या यस्यांशा लोकसाधकाः ।
तमादिदेवं श्रीरामं विशुद्धं परमं भजे ॥ (इतिपाद्मे)
बृहद्ब्रह्मसंहितायामपि-
वासुदेवादिमूर्त्तीनां चतुर्णां कारणं परम् ।
चतुर्विंशतिमूर्त्तीनामाश्रयः शरणं मम ॥'
तथैव श्रीमद्रामायणे-उत्तरकाण्डे-
'महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ।
पद्मे दिव्येऽर्कसंकाशे नाभ्यामुत्पाद्यमामपि ॥
रामस्य पुरुषो लोके सत्यधर्मयशो गुणैः ।
समो न विद्यते कश्चिद्विशेषश्च कुतः पुनः ॥
अयोध्याकाण्डे च-
'सूर्यस्यापि भवेत्सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः ।
श्रियः श्रीश्च भवेदग्र्याः कीर्त्याकीर्तिः क्षमा क्षमा ।'
दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसत्तमः ।'
इत्यादयः प्रसङ्गानुसन्धेयाः ।

पुनः स तच्छेषी-तस्यजीववर्गस्य शेषी नियामकः अतः पदेन पूर्वरीत्या

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

प्रथमान्तेन द्वितीयेन अकारेण पदेन भगवतो र पदवाच्यस्य श्रीरामस्य अनन्यार्ह शेषत्वं प्रोच्यते । तत्रान्यमर्हतीत्यन्यार्ह, न अन्यार्ह शेषो यस्य सोऽनन्यार्हस्तस्यभावोऽनन्यार्हत्वम् । अर्थात् श्रीरामचन्द्रस्यैव सकलजड़चेतनानां नियामकत्वं नान्यस्य तदिति । 'सर्वफलप्रदौ चावां नित्यौ च सर्वशेषिणौ । नित्यलीलाविभूत्योस्तच्चावां नाथौ श्रुतौ श्रुतौ' इतिवशिष्ठसंहितोक्तेः ।

मुहुः पुनः सुरान्तरादिगतशेषताया व्यावृत्तिः **प्रोच्यते** प्रतिपादितो भवति अर्थात् सकलोपि जीवराशिभगवतः श्रीसीताधिपतेरेवशेषो न तु ब्रह्मादिदेवान्तरस्य । एतेषां भगवानेव शेषी न तु ब्रह्मादिकः प्रथितमहात्म्योपिशेषी सकल जीवान्तर्गतत्वेन ब्रह्मादिनां शेषित्वस्यासंभवादितिभावः । अर्थात् श्रीराम एव सकलजीवस्यानन्यशेषी न तु ब्रह्मादिको देवो जीवानामनन्यशेषी, यथा जीवस्य देवदत्तस्य यज्ञदत्तोऽनन्यशेषी न भवति कुतः ? जीवत्वात् तथैव ब्रह्मादिरपि जीवस्य नानन्यशेषी जीवत्वात् किन्तु जीवव्यतिरिक्तो भगवान् श्रीराम एव सर्वस्यानन्यशेषीति । तस्मात्सर्वस्यानन्यशेषी सर्वाधारभूतसर्वेश्वरो भगवान् श्रीराम **एव जीवैरुपास्य इति संक्षेपः ॥४॥**

पूर्व श्लोक से उपर्युक्त प्रकार से श्रीरामबीज 'रां' इसका समुदायात्मक 'रां' का अर्थ बतलाकर बीज के अवयवार्थ का अर्थात् बीज घटक **'र. अ. आ.म्.'** के अर्थ को बतलाने के लिए उपक्रम करते हैं-**'तत्राद्येन पदेन रेण भगवान्नित्यादि'** श्रीरामबीज के अन्तर्गत जो प्रथम पद है रेफ तादृश रेफ में सर्वेश्वर श्रीसीतानाथ श्रीरामचन्द्रजी के सकल जड़चेतन साधारण जगत् का त्रिविध कारण अर्थात् उपादानकारण निमित्तकारण तथा सहकारिकारण रूप त्रिविध कारणता का तथा जगत् का संरक्षक एवं शौर्यवीर्यादि सकल हेय प्रत्यनीक कल्याण गुणों का प्रधान आश्रय कहे जाते हैं । अर्थात् एक ही परमेश्वर श्रीरामजी सकल जगत्कारण हैं । तदतिरिक्त कोई जगत् का कारण नहीं है । यद्यपि एक वस्तु में त्रिविध कारणत्व प्रायः नहीं देखने में आता है । तथापि सर्वसमर्थ परमेश्वर में रूपभेद से सब सम्पन्न होता है । जिस तरह एक ही अग्नि में दाहकत्व पाचकत्व तथा प्रकाशकत्वरूप त्रिविध कार्यकारित्व होता है वस्तु स्वभाव विशेष से, यथा एक ही पुरुष पिता पुत्र मित्र बनता है, पितृत्वादि अपेक्षा से उसी तरह प्रकृत में परमेश्वर सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट

Scanned by CamScanner ankurnagpati08@gmail.com

रूपसे स्थावरजङ्गम जगत् का उपादान कारण होते हैं सङ्कल्पविशिष्टरूप से जगत् का निमित्तकारण अर्थात् कर्ताकारण बनते हैं। जिस तरह घट कार्य के प्रति कुलाल सङ्कल्प विशिष्ट रूप से घटादि का कर्त्ता है। और कालान्तर्यामी रूपसे सहकारी कारण बनते हैं। जिस तरह घटादिकार्य के प्रति काल दिशा प्रभृतिक पदार्थ सहकारी कारण बनता है उसी तरह एक ही लूता कीट शरीर प्रधानरूप से तन्तु का उपादान होता है, और चेतनांश प्रधान होकर के कर्ता कारण बनता है। ऐसा लोक में भी होता है तो ईश्वर तो समाभ्यधिक रहित है। सर्वशक्तिमान् है तो परमेश्वर में त्रिविध कारणत्व घटित होगा इसमें क्या आश्चर्य तथा क्या अनुपपत्ति है ?। इसप्रकार से त्रिविध जगत्कारणत्व ईश्वर में है ऐसा बीज के आद्याक्षर से प्रतिपादित होता है। इस बात को महर्षि व्यासादिक मुनि कहते हैं।

और रेफोत्तर जो अकार पद है उस अकार से सकल चेतन अचेतन पदार्थों का भगवान् श्रीसीतापतिजी शेषी अर्थात् नियामक हैं, ऐसा बोधित होता है यों ऋषि लोग कहते हैं। एवं आकार पद से भगवान् में अनन्यार्ह शेषत्व अर्थात् जीवों की एकमात्र नियामकता है ऐसा बतलाते हैं महर्षिगण। पुनः बीज का जो चरमवर्ण अर्ध मकार है तादृश बीजावयव मकार से सर्वकारण श्रीसीतापतिजी से ब्रह्माविष्णु तथा महेश्वरादिक देवों में जीव के प्रति नियामकता की व्यावृत्ति का प्रतिपादन किया जाता है। अर्थात् सर्वजीव के प्रति यदि नियामक हैं तो श्रीसीतापतिजी ही हैं। किन्तु उनसे भिन्न जो महामहिमतया लोग प्रसिद्ध देवान्तर ब्रह्मादि हैं उनमें जगत् की नियामकता नहीं है। अर्थात् देवतान्तर कोई भी जगत् का नियामक नहीं है। भगवान् श्रीरामजी सबका अन्तर्यामी बन करके नियामक होते हैं। ऐसा-'ईश्वरः सर्वभूतानाम्' इत्यादि तथा अन्तर्यामी ब्राह्मण से सिद्ध होता है जीव जीव का अन्तर्यामी हो ऐसा सिद्ध नहीं होता है। अतः ईश्वर श्रीरामजी ही अनन्यार्ह शेषी तथा सर्वनियामक हैं ॥४॥

पितापुत्रत्वसम्बन्धो जगत्कारणवाचिना ।
रक्ष्यरक्षकभावश्च रेण रक्षकवाचिना ॥५॥

अथैवं न केवलं बीजावयवभूतप्रथमाक्षरेण जगतस्त्रिविधकारणं भगवान् श्रीसीतापतिरेव वाच्यो भवति, अर्थात् जगत्कारणश्रीरामस्यैव वाचकोऽपितु ब्रह्माहिरण्यगर्भादारभ्य कीटस्तम्वपर्यन्तसमस्तस्यापि स्थूलसूक्ष्मसाधारणजगतः

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

रेफप्रतिपादितश्रीरामेण सह विविधप्रकारकसम्बन्धोऽपि भवतीतिदर्शयितुमुपक्रमते-'पितापुत्रत्वसम्बन्ध' इत्यादि । जगतस्त्रिविधकारणवाचिना रेफेण जगत् कारणीभूतश्रीरामेण भगवता सह पितापुत्रत्वसम्बन्धः कथितो भवति । अर्थात् प्रदर्शितसंसारस्य त्रिप्रकारकमपि कारणं वक्ति कथयतीतिकारणवाची, तादृशेन रेफेण कार्यकारणयोः संसारतदुत्पादकयोर्मध्ये पितापुत्रत्वसम्बन्धः प्रतिपाद्यते । यथा प्राकृतस्यापि पुरुषस्य स्वजनितपुत्रेण सह पितापुत्रत्वसम्बन्धो भवत् दृश्यते तथैव प्रकृते उत्पाद्योत्पादकयोः पितापुत्रत्वसम्बन्धं श्रीरामवाचको रेफो दर्शयति । एतावता जगति भगवतो विलक्षणं वात्सल्यमकारणत एव भवतीति प्रदर्शितम् । तथा रक्षकवाचिना रेण रक्ष्यरक्षकभावसम्बन्धो बोधितो भवति । तत्र रक्षतीति रः, 'रक्षपालनेधातुः' तस्मादौणादिक डे प्रत्यये कृते तत एव तादृश म प्रत्यये टेरात्वे राम इति भवति, ततश्च रामात्मकरक्षवाचकरेण रक्षितुं योग्यो रक्ष्यः रक्षतीति पालयतीति रक्षकः रक्ष्यश्च रक्षकश्चेति रक्ष्यरक्षकौ तयोर्भावो रक्ष्यरक्षकत्वसम्बन्धः स च रक्ष्यरक्षकभावसम्बन्धो जगता सह श्रीरामस्य बोधयति रेफात्मकोवर्णः । यथा कश्चित् प्राकृतोपि पिता स्वपुत्रं गुणं विगुणं वा पालयत्येव तथैवायं जगतः पिता सर्वानेव पुत्रस्थानापन्नान् जीवराशीन् पालयतीति भवति तदुभयोः रक्ष्यरक्षकभाव इति तादृशसम्बन्धरेफात्मकबीजाद्यक्षरेण बोधितो भवतीति संक्षेपः ॥५॥

पूर्व श्लोक से बीज घटक रेफादि पदों से श्रीसीतापतिजी का बोध होता है, ऐसा बतलाकर के अग्रिम श्लोकों से ब्रह्मा हिरण्यगर्भ से लेकर के कीट पतङ्ग सकल जगत् का बीज प्रथमाक्षर प्रतिपाद्य श्रीरामचन्द्रजी के साथ जगत् का अनेक प्रकारक सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध को बतलाने के लिए आचार्य कहते हैं-'**पितापुत्रत्वसम्बन्धः**' इत्यादि । स्थावरजङ्गमात्मक समस्त जगत् का भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के साथ रेफ के कारण वाचकता होने से पिता पुत्रत्व सम्बन्ध तथा रेफ के रक्षा वाचक होने से रक्ष्य रक्षकभाव सम्बन्ध भी प्रदर्शित होता है । ऐसा मुनिलोग कहते हैं ॥५॥

शेषशेषित्वसम्बन्धश्चतुर्थ्या लुप्तयोच्यते ।
भार्याभर्तृत्वसम्बन्धोऽप्यनन्यार्हत्ववाचिना ॥६॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

अकारेणाऽपि विज्ञेयो मध्यस्थेन महामते ! ।
स्वस्वामिभावसम्बन्धो मकारेणाथ कथ्यते ॥७॥

न केवलं प्रपञ्चकारणवाचकपदेन जगत ईश्वरयोः पितापुत्रत्वसम्बन्धस्त था रक्षकवाचकरेफेण रक्ष्यरक्षकभावः सम्बन्धः प्रतिपादितो भवति, किन्तु रेफादिपदेन सम्बन्धान्तरमपि प्रतिपादितं भवतीति दर्शयितुमुपक्रमते-'शेषशेषि त्वसम्बन्धः' इत्यादिश्लोकद्वयेन, हे महामते ! सुरसुरानन्द ! अत्र रामित्यत्र पूर्वमर्थात् 'र. अ. आ. म्.' इत्यत्र पूर्वरेफोत्तरं चतुर्थीविभक्तिरासीत् तस्या 'सुपां सुलुक् इत्यादिसूत्रेण लोपोजातः । ततश्च रेफान्तरलुप्तचतुर्थीविभक्त्या जीवराशि परमेश्वरयोः शेषशेषिभावसम्बन्धः प्रोक्तो भवति, अर्थात् परमेश्वरस्सर्वस्यापि जीवसमुदायस्य शेषी भवति, जीवाश्च तस्येश्वरस्य शेषा भवन्तीति तयोः शेष शेषिभावनामकसम्बन्धः स्पष्टतया भासते । तदयमर्थः-समस्तमलदोषहेय गुणादिप्रत्यनीकानन्तकल्याणगुणमहार्णवाय बीजाय प्रथमाक्षर र पदवाच्याय सकलजगत्कारणाय श्रीमते सीतानाथाय शेषिणे सकलजीवराशिः शेषरूपो भवतीतिसारः । र पदोत्तरलुप्ता या चतुर्थी सा सम्बन्धार्थिका नतु निमितार्थिका, तेन सर्वशेषिणो भगवतः श्रीरामस्य सर्वोपि जीवः शेषरूप इत्यर्थो मे प्रतिभाति स च युक्त एवेति हार्दम् ।

अत्रोत्तरार्द्धस्योत्तरश्लोकीयपूर्वार्द्धेनान्वयस्तत्राह-'भार्याभर्तृत्वसम्बन्ध' इति । अनन्यार्हत्ववाचिना मध्यस्थाकारेण रेफाकारमध्यस्थिताकारेणापि जीवे श्वरयोर्भार्याभर्तृत्वसम्बन्धः प्रोक्तो भवति । आकारेण वात्सल्यादिसम्बन्धः प्रोक्तो भवति । अथचान्तिमेन मन ज्ञाने इत्यतः ड्विप्रत्ययेन निस्पन्नः-मन्यते इति म् इति ज्ञातृत्ववाचिना मकारेण जीवेश्वरयोः स्वस्वामिभावः सम्बन्धः प्रोक्तो भवति । भार्याभर्तृत्वादिसम्बन्धस्तत्तत्पदेन कथं किमर्थं वा प्रत्याय्यते इत्याकार कविशेषचर्चा जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरघुवराचार्यकृतश्रीमन्त्रराजमीमांसा नामकग्रन्थविवरणे निरुच्यते ॥६-७॥

जगत् के कारण का कारण वाचक पद से केवल जीव ईश्वर में पितापुत्रत्व सम्बन्ध मात्र का ही कथन होता है इतना ही नहीं किन्तु सम्बन्धान्तर का भी बोध होता है, इस बात को बतलाने के लिए आचार्य उपक्रम करते हैं-'**शेषशेषित्व-**

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

सम्बन्धः' इत्यादि ।

हे महामते सुरसुरानन्द ! 'रां' इत्याकारक जो बीजमन्त्र है इसमें **'र. अ. आ. म्.'** इत्याकारक चार अक्षर हैं । इसमें जो बीज का प्रथमाक्षर **'र'** है उसके बाद में चतुर्थी विभक्ति थी । उस चतुर्थी विभक्ति का 'सुपां सु लुक्' इत्यादि सूत्र से लुक् हो गया है । वह लुप्त जो चतुर्थी विभक्ति है तादृश विभक्ति से जीव समुदाय तथा परमेश्वर में शेषशेषिभाव सम्बन्ध प्रतिपादित होता है । ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं । तथा अनन्यार्हत्व रूप अर्थ का वाचक जो मध्यस्थित बीज का द्वितीय अक्षर **अकार** है उस अकार से जीवेश्वर में भार्याभर्तृत्व सम्बन्ध कहा जाता है । एवं बीज का जो तृतीय अक्षर **आकार** है उससे वात्सल्य शौर्यादि सभी सम्बन्ध का प्रतिपादन होता है । और बीज का चतुर्थाक्षर **मकार** से स्व स्वामिभाव सम्बन्ध प्रतिपादित होता है ऐसा समझो ॥६-७॥

आधाराधेयभावोऽपि ज्ञेयो रामपदेन तु ।
सेव्यसेवकभावस्तु चतुर्थ्या विनिगद्यते ॥८॥

श्रीराममन्त्रराजस्य बीजाक्षरघटकरेफादिवर्णचतुष्कस्य व्याख्यानं कृत्वा तदनन्तरं तत्सम्बन्धितश्रीरामस्वरूपस्य तत्प्रतिपादितसम्बन्धञ्च दर्शयितुमुपक्रमते 'आधाराधेयभावोपीत्यादि' जड़ाजड़सकलप्रपञ्चकारण 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति' 'यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेवयुगक्षये' इत्यादिश्रुतिस्मृतिप्रसिद्धसर्वाधारभूतश्रीरामात्मकेश्वरप्रतिपादक श्रीरामपदेन जीवराशिपरमेश्वरयोराधाराधेयभावः प्रतिपादितो भवति । श्रुत्या दिभिः श्रीरामस्य सर्वाधारता प्रतीयते तदन्यस्य सर्वस्य वस्तुन आधेयता प्रती यते, इतिप्रकृतश्रीरामपदं विश्वविश्वेशयोराधाराधेयभावसम्बन्धं बोधयति । तथा मन्त्रघटकश्रीरामपदोत्तरविद्यमानचतुर्थी विभक्त्या अर्थात् रामाय इत्यत्र रामेति पदमाधाराधेयभावं प्रतिपादयति अलुप्तचतुर्थीविभक्तिस्तु जीवेश्वरयोः सेव्य सेवकभावसम्बन्धो बोधयति । अर्थात् सर्वाधारभूतः श्रीरामः सेव्यः कायिक वाचिकमानसिकव्यापारेण । जीवराशिस्तु सेवकः । सेवनक्रियायाः कर्मीभूतो भगवान् श्रीरामः । तथा सेवनात्मिका क्रियायाः कर्त्ताजीवः । इत्युभयोः सेव्यसेवकतया वद्धमुक्तनित्यसूरिजीवैः श्रेयस्कामैरवश्यमेव सेव्योनान्यथा

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

गत्यन्तरमिति व्यक्तं चतुर्थीविभक्तिर्वदतीतिभावः । नहि तृषितो जाह्नवीतीरे कूपखननन्यायो ऽनुसरणीय इतिसारः ॥८॥

छ अक्षरवाला '**रां रामाय नमः**' इस मन्त्रराज में जो प्रथमाक्षर बीज है उसका व्याख्यान करके तादृश '**रां**' बीज से सम्बन्धित जो बीज स्वरूप उसका सम्बन्ध क्या है ? इस बात को समझाने के लिए उपक्रम करते हैं-'**आधाराधेयभावो-पीत्यादि**'-

'**रामाय**' यहाँ चतुर्थी प्रत्यय का जो प्रकृति श्रीरामपद है उस श्रीराम पद से चेतनाचेतन अर्थात् जीव जड़ महाभूत से लेकर प्रकृत्यन्त पदार्थ तथा 'आत्मा ज्ञानमयो ऽमलः' 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इत्यादि श्रुति बोधित जो परमकारण श्रीरामात्मक आत्मा है इन दोनों में आधाराधेयभाव सम्बन्ध का प्रतिपादन किया जाता है ।

आधेयत्व, एकमात्र में रहता है द्विष्ठ नहीं है । और सम्बन्ध वह होता है जो दो में रहनेवाला हो । तब आधारत्वाधेयत्व को सम्बन्ध कहना तो समीचीन जैसा नहीं लगता है । तथापि आधारतानिरूपिताधेयत्व तथा आधेयतानिरूपित आधारत्व की सम्बन्ध मानने से कोई क्षति नहीं है । इसलिए आचार्यश्री ने आधाराधेयभाव को सम्बन्ध मान लिया है ।

और 'रामाय' में जो विद्यमान चतुर्थी विभक्ति अर्थात् जिसका लोप नहीं हुआ है उस विद्यमान चतुर्थी विभक्ति से जीव तथा ईश में सेव्य सेवक भाव बोधित होता है। इसमें श्रीराम सेव्य हैं तथा जीव समुदाय जो कि वद्ध मुक्त और नित्यसूरि विभाग से त्रिधा विभक्त हैं, सेवक हैं । तादृश भगवान् श्रीरामजी सर्वदा जीवों से सेवनीय हैं ॥८॥

नमः पदेनाखण्डेन त्वात्मात्मीयत्वमुच्यते ।
षष्ठ्यन्तेन मकारेण भोग्यभोक्तृत्वमप्युत ॥९॥

न केवलमाधाराधेयभावसम्बन्धस्तथा सेव्यसेवकभावसम्बन्धो जीवराशिपरमेश्वरयोरपितु तदतिरिक्तोऽपि जीवेश्वरयोः सम्बन्धो विद्यते इतिसम्बन्धान्तरमपिदर्शयितुं प्रकृतश्लोकमवतारयन्नाह 'नमः पदेनाखण्डेनेत्यादि । तत्र नमः पदं द्विविधं सखण्डमखण्डञ्च, यत्रावयवार्थस्य श्लेषो भवति तत्सखण्डम् । यत्रत्ववयवार्थो पार्थक्येन नाववुध्यतेऽपितु समुदायार्थप्रतीत्यैवार्थबोधो जायते

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

तदखण्डम् । अर्थात् खण्डश्छेदः स यत्र न भवति तदखण्डम् । यत्र खण्डछेदोभवति तत्सखण्डम् । तत्राखण्डेन छेदरहितेन नमः पदेन जीवेश्वरयोरात्मात्मीयत्वाख्यसम्बन्धः प्रतिपादितो भवति । 'रां रामाय नमः' इति मन्त्रे रां रामाय इत्यनेन पूर्वकथितोऽनेकप्रकारकः जीवेशयोः सम्बन्धः । संप्रति नमः पदेन कीदृशः सम्बन्ध इति तद्दर्शितं भवतीति भावः । अर्थात् अखण्डेन नमः पदेन यथोक्तः सम्बन्धोऽर्थादात्मात्मीयत्वरूपः सम्बन्धः प्रतिपादितो भवति । नमो घटकेन षष्ठीविभक्त्यन्तेन खण्डेन मकारेण तु भोग्यभोक्तृत्वसम्बन्धः कथितो भवतीति हे सुरसुरानन्द ! श्रुतिस्मृत्यादिद्वारा त्वयापि ज्ञायताम् । अहं तु तादृश सम्बन्धं जानामि त्वामपि मद्वचनात्तथा श्रुत्यादिकमन्विष्य जानीयाः ज्ञात्वा च मननादिना तन्निर्णयं कुरु नात्र संशयस्यावसरो दातव्य इति तात्पर्यः ॥९॥

'रां रामाय नमः' यह जो मन्त्रराज है जिसको महर्षिगणों ने श्रुतिस्मृति का आलोडन करके तारक मन्त्र कहा है । उस मन्त्र के आदि में **रां. रा. मा.** तथा **य.** इन चार पदों के अर्थ को बलता करके **नमः** इत्याकारक जो पञ्चम तथा षष्ठ पद हैं उनकी व्याख्या बतलाने के लिए आचार्यजी कहते हैं-'**नमः पदेनाखण्डेन**' इत्यादि ।

अखण्ड जो नमः पद है, तादृश नमः पद से चेतनाचेतन साधारण सकल जगत् तथा श्रीरामात्मक परब्रह्म में आत्मात्मीयत्व सम्बन्ध प्रतिपादित होता है ऐसा महर्षि गण कहते हैं । अर्थात् आत्मात्मीयत्व सम्बन्ध घटक प्रथम आत्मा पद ईश्वर वाचक है । क्योंकि 'अन्तर्यामी ब्राह्मण में 'एष ते आत्माऽन्तर्यामी अमृतः' इस वाक्य से कहा है । तो आत्मा स्वरूपतः व्यापक तथा जगत् कारण ब्रह्म का आत्मीय जीव है । इसलिए जीवेश्वर में आत्मात्मीयत्व रूप सम्बन्ध घटता है । हे सुरसुरानन्द ! तुम इस बात को मद्वचन तथा श्रुति स्मृति पुराणों से जानो ।

और सखण्ड नमः पद घटित षष्ठ्यन्त **म** पद से जड़चेतन साधारण जगत् तथा सर्वकारण परमेश्वर में भोग्य भोक्तृत्वादिक सम्बन्ध प्रतिपादित होता है । इसमें सकल जगत् भोग्य है तथा परमेश्वर भोक्ता है । क्योंकि जड़चेतन सकल जगत् भगवान् श्रीरामजी को सुख पहुँचानेवाले हैं एतदर्थ इन सर्व विषयों का निर्माण हुआ है । हे सुरसुरानन्द ! तुम भी भोग्य भोक्तृत्वादि सम्बन्ध जगत् तथा ईश्वर में है, ऐसा

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

श्रुत्यादि के द्वारा जानो ॥९॥

ज्ञानानन्दस्वरूपोऽवगतिसुखगुणोमेनवेद्योऽणुमानो-
देहादेरप्यपूर्वो विविदितविविधस्तत्प्रियस्तत्सहायः ।
नित्यो जीवस्तृतीयेन तु खलुपदतः प्रोच्यते स्वप्रकाशो-
जिज्ञासूनां सदेत्थं शुभनतिसुमते शास्त्रवित्सज्जनानाम् ॥१०॥

हे शुभनतिसुमते सुरसुरानन्द ! पूर्वकालिकमुनिभिस्तृतीयेन मेन इत्याका रकपदेन शास्त्रवित्सज्जनानां जिज्ञासूनां जीवस्वरूपज्ञातुमिच्छताम्, सदा वेद्यः ज्ञानानन्दस्वरूपः अवगतिसुखगुणक, अणुपरिमाणवान् देहादेरपूर्वः विविदित विविधः, तत्प्रियः तत्सहायः नित्यः सदैकरूपः स्वप्रकाशः जीवः प्रोच्यते तु स तु जीवः इत्थमुक्तप्रकारेणत्वया जीवस्वरूपजिज्ञासुना ज्ञातव्यः । अष्टावयवपक्षे तु तृतीयेन मेन चतुर्थावयवमकारेण पदतः नित्यजीवादविशिष्टा बद्धमुक्तजीवाः प्रोक्ता भवन्ति ते च नित्यमुक्तबद्धजीवाः सदा इत्थं ज्ञानानन्दादिवक्ष्यमाण विशेषविशिष्टतया जिज्ञासूनां वेद्या भवन्तीतिभावः ।

तदत्र षडक्षरश्रीराममन्त्रे तृतीयपदमकारेण कस्य बोधो भवतीति शिष्यजि ज्ञासामपनेतुं तृतीयेन मकारात्मकपदेन ज्ञानादिगुणको जीव एवोक्तो भवतीति प्रतिपादयितुमाचार्य उपक्रमते 'ज्ञानानन्दस्वरूपः' इत्यादि । शुभे परमेश्वरे नति प्रणामविषयकमतिर्विद्यते यस्य स शुभनतिसुमतिस्तत्संबुद्धौ हे शुभनतिसुमते सुरसुरानन्द ! अर्थात् सर्वकल्याणदायकतया सर्वेभ्यः शुभः परमेश्वर इति बुद्ध्या परमेश्वरनमस्कारे विमला मतिः यस्येति । पदतः अत्र तृतीयार्थे तस्मिल् प्रत्ययस्तेन पदतः तृतीयेन मेन नमस्कारात्मकपदेन जिज्ञासूनां जीवस्वरूपविषय कज्ञानेच्छावताम् शास्त्रवित् शास्त्रजनितज्ञानवतामत एव सज्जनानां प्रत्युपका रानपेक्षोपकारकर्तृणाम् सर्वदाऽनवरतं बीज एव वेद्यो ज्ञातुं योग्यस्तृतीयेन मका रात्मकपदेन प्रोच्यते कथितो भवति । कीदृशः स जीवो यस्तृतीयपदवाच्य स्तत्राह-'ज्ञानानन्दस्वरूपः' 'आत्माज्ञानमयोऽमलः' 'सत्यं ज्ञानमानन्दम्' इत्यादि श्रुतिबोधितज्ञानानन्दमय इत्यर्थः । पुनश्च 'अवगतिसुखगुणः' तत्रावगतिर्ज्ञान मनुकूलवेदनीयं च सुखं तदुभयगुणो यस्य स ज्ञानसुखादिगुणवानिति । ननु

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

जीवो ज्ञानादिस्वरूपो ज्ञानगुणवानितिकथं स्यात् स्वस्मिन् स्वस्याभावात् इति चेन्न भावानवबोधात्, ज्ञानं द्विविधं धर्मरूपं धर्मिरूपञ्च । तत्र धर्मिभूतज्ञानं जीवाधिकरणं तथा धर्मभूतज्ञानादिकं गुण आधेयादिरूपः । यथा प्रदीपस्तदीयप्रभयोः प्रकाशरूपत्वेन सजातीयत्वेऽपि प्रदीपात्मके तेजोऽधिकरणं प्रभारूपं च तेज आधेयं भवति न तत्र तयोराधाराधेयभावे कश्चन विरोधो भवति तथैव प्रकृते उभयोर्ज्ञानत्वेपि आधाराधेयभावेन व्यवस्था सूपपादिता भवति न कोऽपि विरोध इति ध्येयम् ।

पुनश्च कीदृशोजीवस्तत्राह-'अणुमानः' अणुर्मानं परिमाणं यस्य सोऽणुमानः । 'एषोणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः' बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च । भागोजीवः स विज्ञेयः' इत्यादिश्रुत्या जीवस्याणुत्वसिद्धेः । तस्य मध्यमपरिमाणे तु देहादिविनाशेन जीवस्यापि विनाशित्वं प्रसज्येत । व्यापकपरिमाणवत्वे तु चन्द्रलोकादौ गमनागमनानुपपत्तेः । व्यापके वस्तुनि गमनादिक्रियाया अनुपपत्तेः नहि भवति गगनं गच्छत्यागच्छतीति प्रतीतिस्तस्मात्तदुभयपक्षस्य दोषदुष्टतया जीवस्याणुपरिमाणवत्वमेव सिद्धान्तः साधुरिति शास्त्रमर्यादा । न च जीवस्याणुत्वे शरीरैकदेशे एव सद्भावेन निदाघे जाह्नवी सलिले निमज्जतां सर्वाङ्गीणशैत्योपलब्धिः कथं स्याज्जीवस्याणुत्वादितिवाच्यम् ज्ञानगुणव्यापित्वे नैकसमये सकलशरीरगतशैत्याद्यनुभवे वाधकाभावात् यथा गृहैककोणेऽवस्थितो प्रदीपः सर्वत्र प्रसृमरप्रकाशेन सम्पूर्णं गृहं प्रकाशयति । तथैव शरीरैकदेशेऽवस्थितोऽपि जीवः ज्ञानगुणव्याप्त्या एकस्मिन्नेव काले सर्वमनुभावयति । यथा वा एकत्रविद्यमानं कुसुमं गन्धव्याप्त्या सर्वानेवामोदयति, तद्वत् प्रकृतेऽपि । एतत्तत्वं, 'गुणाद्वा लोकवत्' तद्गुणसारत्वात्तद् व्यपदेशः' इत्यादिब्रह्मसूत्रे विस्तरेणानन्दभाष्यकारा अवोचन् । विशेषजिवृक्षुभिस्तत्रैवाधिकं द्रष्टव्यम् । तस्मादणुपरिमाणक एव जीव इति सिद्धमतः सूष्ठूक्तम् 'अणुमानः' इति । तदत्र-

'अकर्ता विभुर्नाथवा मध्यमानो, नवा ज्ञानशून्यो जडो दुःखरूपः ।
अणुर्ब्रह्मणोंऽशः शरीरञ्च शेषः, परं रामचन्द्रस्य दासश्चिदात्मा ॥'

इत्यादिकं जगद्गुरुश्रीचिदानन्दाचार्योक्तमनुसन्धेयमितिदिक् ।

पुनश्च कीदृशः स जीवो यो हिः इहलोकयात्रापथिकस्तत्राह-'देहादेरपूर्वः' श

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

रीरेन्द्रियमनोबुद्धिविषयेभ्योऽपूर्वो विलक्षणो भिन्न इत्यर्थः । अर्थात् नायं जीवो देहादिरूपोऽपितु शरीरादिभ्यो विभिन्न एव अन्यथा शरीरादेर्विनाशदर्शनेन तद भिन्नस्य जीवस्यापि शरीरादेर्विनाशे विनाश एव स्यात् । ततश्च यागादिक्रिया जनितपारलौकिकफलभोक्तुरभावेन स्वर्गादिफलमुदिश्य, स्वर्गकामो यजेत इत्यादि विधिप्रतिषेधादिशास्त्राणामानर्थक्यमेव स्यात् । तथा मोक्षस्यापि वार्तमानिकशरीरपातानन्तरमेव प्राप्तेः प्रतिपादनात् शरीरनाशेन तदभिन्नस्य जीवस्यापि विनाशेन मोक्षप्रयोजनकभगवत्कैङ्कर्यादिक्रियास्वपि लोकानामप्र वृत्तेर्मोक्षशास्त्रमपि निरर्थकमेव भवेत् तस्मान्नशरीरादिरूपो जीवोपितु देहा-दिभ्योऽत्यन्तभिन्न एवेति ज्ञेयम् ।

न च स्थूलोऽहं कृशोऽहमित्यादिप्रतीत्या स्थूलत्वाहंत्वयोः सामानाधिक रण्यदर्शनेन स्थूलत्वादिधर्मस्य देहादिनिष्ठत्वस्य प्रत्यक्षतोऽनुभवेन अहंत्वस्यापि शरीरनिष्ठत्वेनैव भवितव्यमिति शरीरादिरूप एव जीव इति वाच्यम्? बाल्ये वि लोकितस्य स्थाविरे स्मरणानुपपत्तेः, भवति च प्रतिसंधानं यदहं मातृपितरमन्व भूवं सोहं बृद्धे प्रणमामीत्याकारकस्मरणम् तत् शरीरेन्द्रियादिना जीवस्य ता-दात्म्ये सर्वथैव वाध्येत तस्मादेहादिभ्यो विलक्षण एव जीव इति ध्येयम् । तदाहुर्जगद्गुरुश्रीश्रुतानन्दाचार्याः-

सुखज्ञाणुचिज् ज्ञातृरूपोस्ति जीवः परब्रह्मणोंऽशस्तनुर्नित्यशेषः ।
न देहेन्द्रियप्राणबुद्धिस्वरूपो विकारी जडो ब्रह्मरूपोऽपि नैव ॥

पुनश्च जीवः कीदृशस्तत्राह-'विविदितविविधः' विविशेषेण विदितोज्ञा तश्चासौ विविधश्च बद्धमुक्तनित्यादिभेदेनानेकप्रकारकश्चासाविति विविदितविवि धः । अर्थादयं जीवः प्रथमतो बद्धमुक्तनित्यसूरिभेदेन त्रिविधः, पुनश्च बद्धोप्य नेकप्रकारकः तदेकत्वे सुखित्वदुःखित्वादिव्यवस्थानुपपत्तेः । तथा जन्ममरणादि व्यवस्थाया अनुपपत्तेश्च तथा मुक्तोपि जीवोऽनेक एव । नित्यसूरयोप्यनेका एव । श्रुतिस्मृतिभ्यां तथैव प्रसिद्धेः । जीवस्यैकत्वेऽनेकत्वप्रतिपादकश्रुतिनां तदुपबृंह णपरकशास्त्राणां च नैरर्थक्यमापद्येत तस्मादनेकविध एव जीवो नत्वेकः । न च जीवैकत्वेप्युपाधिभेदादेव जन्ममरणादिव्यवस्था बद्धमुक्तादिभेदादिसर्वापिव्य वस्थोपपादिता स्यात् घटाद्युपाधिभेदेनाकाशादिव्यवस्थावदितिवाच्यम्? शरीरादे

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

प्रतिक्षणविनाशितया एकस्मिनपि जन्मनि भेदप्रसङ्गात् । तथा च कृशशरीरकस्य स्थौल्ये जात इति प्रतीतिस्तथा स्थूलस्य कृशत्वे मृत इति एकस्मिन्नपि जन्मनि प्रसज्येत तस्मान्नैकजीववादोऽपित्वनेकजीववाद एव श्रेयान् तदेव विविदित विविध इत्यनेन प्रदर्शितवानाचार्यः ।

पुनः कीदृशो जीवस्तत्राह-'तत् प्रियः' तस्य परमात्मनः सर्वेश्वरश्रीरामस्य प्रियोऽतिशयेन प्रेयानिति तत्प्रियः । तदुक्तं गीतायाम् 'प्रियो हि ज्ञानिनोत्यर्थमहं स च मम प्रियः' इति । अत्र ज्ञानिनामतिप्रियत्वकथनेन जीवमात्रस्य परमेश्वरप्रियताया अर्थत एव प्राप्तेः । तथा परमेश्वरः सूर्यवत् सर्वस्यापि मित्ररूप इति मित्रस्यैकस्यापरं प्रति स्वाभाविकप्रेमदर्शनेन परमेश्वरप्रियत्वस्य सुतरामेवजीवे संभवेन 'तत्प्रियः' इति कथनमाचार्याणामतिसमीचीनमेवेति तत्त्वम् ।

पुनश्च कीदृशो जीवस्तत्राह-'तत्सहायः' स जगत्कारणसर्वशक्तिमान् सर्वज्ञः परमात्मा श्रीरामः सहायः सहाय्यकारकः सखा वा यस्य स तत्सहायः परमात्मसहायो जीवः मोक्षार्थं प्रवृत्तस्य भगवतः साहाय्येनैव तत्सिद्धेः । एष एव उ साधु कारयतीतिश्रुतेः । 'द्वासुपर्णा सयुजासखायाः समानं वृक्षं परिषस्वजाते' इत्यादौ जीवसखित्वेन भगवति प्रयोगदर्शनात्, भवति जीवः परमात्मसहायः । नात्र षष्ठी तत्पुरुषोऽपितु बहुव्रीहिः समास एवादर्तव्यः अतएव परमात्मनः सहायको जीव इत्यर्थो न किन्तु परमात्मैव सहायको भवति यस्यैवार्थः सुष्ठुतरः ।

अथ ज्ञानानन्दादिविशेषणवैशिष्ट्यजीवस्य तदैवसार्थक्यं स्यात् यदि जीवो नित्यो भवेत् जीवस्यानित्यत्वे प्रतिक्षणोत्पादविनाशवत्वे जलबुद्बुधवत् ज्ञानादिविशेषणवैशिष्ट्याभिधानं सर्वं निरर्थकमेव भवेदित्याशंकां निराकर्तुं तस्य नित्यत्वसाधनायोपक्रमते, 'नित्यः' इति स जीवो नित्यो नत्वनित्यः प्रतिक्षणविनाशी वा 'अजोह्येकोजुषमाणोनुशेते' अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे' 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः' । हन्ताचेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् । उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यत' इत्यादिश्रुतिस्मृतिभ्यां जीवस्य नित्यत्वश्रणवात् । देवदत्तो जातो मृतश्चेत्यादिव्यवहारस्तु स्वकृतकर्मोपाधिविषयको नतूपधेयविषयक इतिताद्दश प्रतीतीनां न विरोधोऽतोजीवो नित्य एवेति स्थितमित्यत्र यद्वक्तव्यं तदन्यत्र

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

प्रपञ्चितमिति विरम्यते ॥१०॥

बीजघटित अर्थ को बतलाने के बाद, 'रां रामाय नमः' यह जो छ अक्षर वाला तारक मन्त्रराज है उसका प्रथम पद जो 'र' है उस 'र' के वाच्य जो परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी हैं उन श्रीरामजी के साथ 'अ' 'आ' 'म्' 'राम' 'आय' 'न' तथा 'म' इन अवयवों के सम्बन्ध को बतलाने के बाद अब अग्रिम श्लोक से 'म' मकार के अर्थ को बतलाने के लिए उपक्रम करते हैं '**ज्ञानानन्दस्वरूपः**' इत्यादि परमेश्वर को सर्वभाव से नमस्कार करने से विमलमतिवाले हे सुरसुरानन्द ! शास्त्रजनित परोक्ष ज्ञानवान् सज्जन विरक्त जिज्ञासु अधिकारियों के जानने के योग्य जीव को तृतीय अक्षर 'म' पद से श्रीवशिष्ठ व्यास वाल्मीकि प्रभृति महर्षियों ने कहा है । अर्थात् मन्त्र घटक तृतीय मकार का वाच्य जीवराशि है जो मुमुक्षुओं से अवश्य ज्ञातव्य है। अन्यथा जीव के स्वरूप ज्ञान के बिना मोक्षादि शास्त्र में प्रवृत्ति नहीं होगी । तो वह म पद वाच्य जीव किस प्रकार का है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं '**ज्ञानानन्द स्वरूपः**' वह जीव ज्ञान तथा आनन्द स्वरूप ही हैं । न तु जड पदार्थवत् रूपरसादि मान् 'सत्यं ज्ञानमानन्दम्' 'प्रज्ञानधनः' इत्यादि श्रुति सिद्ध आनन्द स्वरूप है । तथा वह जीव अवगति ज्ञान तथा सुखादि गुणों का न्याय सिद्धान्तवत् अधिकरण है । 'ज्ञानाधिकरणमात्मा' 'ज्ञोऽत एव' इत्यादि संसिद्ध हैं । पुनः वह जीव अणु परिमाणवाला है । किन्तु शरीर परिमाणवान् नहीं है । नवा व्यापक परिमाणवान् है। यदि शरीर परिमाणवान् अर्थात् मध्यम परिमाणवान् माना जाय तब घटादिवत् अनित्य होने से स्वर्गमोक्षादि शास्त्र का वैयर्थ्य हो जायेगा । तथा व्यापक परिमाणवान् मानने पर व्यापक में क्रिया नहीं होती अतः जीवों का चन्द्रलोकादिक लोकों में गमनागमन का जो प्रतिपादन किया है वह निरर्थक हो जायेगा । अतः जीव अणु परिमाणक हैं ।

जीव को अणु परिमाणक होने में श्रुति प्रमाण है 'बालाग्रशतभागस्यशतधा कल्पितस्य च । भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते' एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश' इत्यादि । यदि अणु परिमाणक जीव को न माने तब तो अति सूक्ष्म नाडियों में जो जीव का चलन होता है ऐसा शास्त्रों में कहा है वह बाधित हो जायगा ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

तथा वह जीव शरीरेन्द्रिय मन बुद्धि प्रभृतिक प्राकृत जड पदार्थों से सर्वथा भिन्न है। अर्थात् जीव शरीरादि रूप नहीं है। अन्यथा शरीरादिक के अनित्य होने से जीव भी अनित्य होगा, तब. 'जो मैंने बाल्यालस्था में माता पिता का अनुभव किया वह मैं अभि पौत्र दौहित्र का अनुभव करता हूँ। ऐसा अनुसंधान नहीं होगा, इसलिए जीव देहादि से भिन्न है। पुनः यह जीव बद्ध मुक्त नित्यसूरि भेद से अनेक है। इस विशेषण से एकात्मवाद का खंडन करने के तरफ आचार्य का आशय प्रतीत होता है। यदि जीव को एक माना जाय, तब अमुक जीव बन्धन में है, अमुक जीव मुक्त है अमुक जीव नित्यमुक्त है। यह जो विभाग श्रुति पुराणादिक में आया है। वह प्रमत्त गीत प्राय हो जायेगा। अतः जीवानेकवाद ही शास्त्र संमत है। एवं बद्ध जीवों में एकता माना जाय, तब जन्ममरण अन्धत्वादिक की व्यवस्था नहीं होगी। यहाँ 'जननमरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च। पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्य विषर्य याच्चैव' इत्यादि सांख्यकारिकोक्त युक्ति का भी अनुसरण करना चाहिये।

पुन यह जीव **तत्प्रिय** है। अर्थात् परमात्मा का अत्यन्त प्रिय है। 'प्रियोहि ज्ञानिनोऽत्यर्थ महं स च मम प्रियः' इस गीता वचन के अनुसार जीव परमात्मा का परम प्रिय है। पुनः यह जीव परमात्मा सहाय है। अर्थात् परमात्मा है, सहायक जिसका एतादृश जीव है जो कि परमात्मा का अनुचर सेवक है। तथा मवाच्य जो जीव है वह नित्य है न तु करण कलेवरवत् अनित्य है। क्योंकि 'देहीनित्यमवध्योयं देहे सर्वस्य भारत' 'नैनं छिन्दन्ति शास्त्राणि नैनं दहति पावकः' 'नित्यः सर्वगतः स्था णुरचलोयं समातनः' 'अजोह्येकोजुषमाणोऽनुशेते' 'हन्ताचेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्' उभौ तौ न विजानीतोनायं हन्ति न हन्यते' इत्यादि श्रुति स्मृति प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जीवनित्य त्रिकाल में रहनेवाला है। और यह जीव स्वयं प्रकाश है। 'अत्रायं पुरुषः स्वयंज्जोतिर्भवति' यह श्रुति कहती है कि जीव स्वयं प्रकाश है स्वकीय स्वरूप के प्रकाशन करने में स्व प्रकाश है। और विषय का प्रतिपादन करने में इन्द्रियादि जनित धर्म ज्ञान सापेक्ष है। हे सुरसुरानन्द ! ऐसा महर्षियों ने मकार वाच्य जीव के स्वरूप को बतलाया है। तुम भी इसी प्रकार जीव स्वरूप को जानो ॥१०॥

मवाच्योऽहं रवाच्याय शेषभूतोऽस्मि सर्वदा ।

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

इतीत्थमेवबोध्यो ज्ञैर्वाक्यार्थस्तद्विवित्सया ॥११॥

अथ सम्पूर्णमन्त्रघटक 'र' आदिप्रत्येकपदार्थं पूर्वश्लोकादिभिर्निरुप्य तदनु सम्पूर्णमन्त्रस्य वाक्यार्थं बोधयितुमुपक्रमते 'म वाच्योऽहं र वाच्याय' **इत्या दि । अयमाशयः शाब्दबोधे घटादिपदज्ञानं करणं भवति तथा तादृशपदस्मारित पदार्थज्ञानं द्वारं भवति स्मारकत्वात् शक्त्यादिज्ञानं सहकारिकारणं भवति ततश्च शाब्दबोधात्मकं कार्यमुत्पद्यते इतिशाब्दिकानां नियमः । ततश्च पदार्थज्ञानेजाते तद्वारीकृत्य वाक्यार्थज्ञानं ततो महावाक्यार्थबोधो भवतीति प्रक्रियामाश्रित्य जगदाचार्यो मन्त्रघटकप्रत्येकपदार्थस्यार्थं कृत्वा शब्दद्वारीकृत्य समस्तमन्त्रस्य वाक्यार्थनिरूपणाय प्रक्रमते** 'मवाच्योहं रवाच्याय' **इत्यादि । हे सुरसुरानन्द !** 'विवित्सया' **पदार्थज्ञानपूर्वकसम्पूर्णमन्त्रस्य वाक्यार्थं बोधयिमुमिच्छया,. ज्ञैः मन्त्रार्थज्ञानवद्भिः इतिवक्ष्यमाणप्रकारेण बोद्धव्यः । केन प्रकारेण ज्ञातव्यस्त त्राह-**'मवाच्यः' **इत्यादि । मवाच्यो मेन मकारात्मकमन्त्रावयवेन वाच्योऽहं जीवः, रवाच्याय मन्त्रघटकरेफात्मकवर्णेन वाच्यः तस्मै रवाच्याय सर्वशेषिणे श्रीरामचन्द्राय** सर्वदा **त्रिकालेपि शेषभूतोस्मि अर्थात् कुसुमदामादिवद्यथेष्टविनि योगार्हो भवामि । एवं च** 'राम' **इत्यत्र श्रीरामघटकपदार्थत्रयबोधपूर्वकमहावा-क्यार्थो भवतीति स्पष्टीकृत इति जिज्ञासुभिर्ज्ञातव्य इत्यर्थः ॥११॥**

बीज घटक प्रत्येक पद का अर्थ बतला करके इस श्लोक से सम्पूर्ण वाक्य के अर्थ को बतलाते हैं । क्योंकि वाक्यार्थ बोध में पदार्थज्ञान को कारणत्व होता है । पदार्थज्ञान होने के वाद ही वाक्यार्थ बोध होता है । क्योंकि शब्द बोध में पदज्ञान कारण होता है । तथा पदजनित पदार्थ ज्ञान व्यापार होता है । तथा शक्त्यादिरूप वृत्ति सहकारी कारण है । तब शब्द बोध रूप कार्य होता है । हे सुरसुरानन्द ! सम्पूर्ण श्रीरामतारक मन्त्रराज का वाक्यार्थ जानने के लिए या शिष्यादि को जनाने के लिये महर्षि पराशरादिक महापुरुषों ने बीज के वाक्यार्थ को इस वक्ष्यमाण प्रकार से कहा है-**'मवाच्योहम्' म** पद वाच्य मैं अधिकारी जीव 'र' पद वाच्य सर्वशेषी परमात्मा भगवान् श्रीरामजी का शेष रूप हूँ । जैसे चन्दन वनमाला प्रभृति उपभोग्य वस्तुओं का भगवान् यथेष्ट विनियोग करते हैं उसी तरह भगवान् के उपभोगार्ह मैं भी हूँ । इस तरह प्रत्येक जीवों को परमात्मा का शेष अपने को समझना चाहिए । हे सुरसुरा

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

नन्द ! तुम भी अपने को ऐसा ही मानो ॥११॥

रामायेति चतुर्थेन श्रियादेव्यास्तु सर्वदा ।
चेतनाऽचेतनानां च रमणाश्रयतेर्यते ॥१२॥

मन्त्रराजघटकचतुर्थरामायेति पदार्थंविवरितुमुपक्रमते 'रामायेति चतुर्थे ने' त्यादि । हे सुरसुरानन्द ! चतुर्थेन रामायेति पदेन-

'मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परिप्सता ।
बधं चानिच्छता घोरं त्वयाऽसौ पुरुषर्पभः ॥
विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः ।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ॥
प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् ।'

इत्यादिरूपेण श्रीवाल्मीकिमहर्षिप्रदर्शितपथा बाहुलकात्कर्मणि क्विवन्त श्रिञ् धातोः श्रीयते ब्रह्मादिगणैः सेव्यते इति श्रीः, तथा या हिंसार्थकश्रृधातो रौणादिकडीप्रत्ययनिष्पन्नेन श्रृणाति स्वाश्रितदोषान् हिनस्तीति श्रीः यद्वा अन्त र्भावितण्यर्थात् श्रृणोतेरौणादिके ड्विप्रत्ययनिष्पन्नेन श्रावयति स्वाश्रितजन सर्वविज्ञापनादिकं वात्सल्यैकस्वरूपत्वात्स्वयं च श्रृणोतीति श्रीः, तया देव्याः विदेहजायाः, तथा चेतनाचेतनात्मकसकलजगतो रमणाश्रयता, ईर्य्यते कथ्यते सर्वदा सर्वकाले श्रीरामे अर्थात् 'रामोरमयताम्वरः' इत्यादिवचनेन श्रीसीताया रमयितृत्त्वं तथा स्वजातसकलजगतोपि सर्वदैव रमयितृत्वं श्रीरामेऽस्तीति चतुर्थ रामायेति पदेनोक्तं भवतीतिसारः ॥१२॥

अब आचार्यजी **'रामाय'** इत्याकारक जो चतुर्थ पद है, उसके अर्थ को बतलाते हुए कहते हैं-**'रामायेति चतुर्थेन'** इत्यादि । हे सुरसुरानन्द ! पूर्वकालिक महर्षियों ने मन्त्रघटक चतुर्थी विभक्त्यन्त चतुर्थ पद से विदेहजा श्रीसीताजी तथा समस्त जड़ चेतनात्मक हिरण्यगर्भ से लेकर के कीटपतङ्ग स्थावरात्मक प्रपञ्च को अति विलक्षण भोग्य वस्तु देने के कारण भगवान् श्रीरामजी में रमणाश्रयत्व को प्रतिपादन किया है। यह 'रामो रमयताम्वरः' इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है ॥१२॥

स सर्वविधबन्धुत्वं सर्वप्राप्यत्वमेव च ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

सर्व प्रापकता तेन तथा चोभयलिङ्गता ॥१३॥

हे सुरसुरानन्द ! हिरण्यगर्भादारभ्य स्थावरान्तसकलजड़चेतनात्मक प्रपञ्चेषु, 'यः पृथिव्यां तिष्ठन्' इत्यादिश्रुतिसिद्धान्तर्यामितया सर्वान् रमयतीति यः स रामः इत्यर्थकतच्छब्देन तेन रामायेति चतुर्थ्यन्तचतुर्थपदेनैव भगवतो रामाख्येश्वरस्यैव सर्वप्रकारकबन्धुत्वं सर्वप्राप्यत्वं सर्वप्रापकत्वं च महर्षिभिः कथ्यते। तथा च तस्य रामस्योभयलिङ्गत्वं सर्वत्रावस्थितस्य सर्वदोषराहित्यं सर्वकल्याण गुणाकरत्वमेतदुभयत्वमपि कथ्यते । अर्थात् प्रत्युपकारानपेक्षतया सर्वस्य बन्धुः तथा सर्वप्राप्यः सर्वस्य मोक्षादिप्रापको भगवान् श्रीराम एवेति चतुर्थेन रामायेति पदेन कथितं भवतीति श्रीपराशरादिका वदन्तीतिभावः प्रकृतोभय-लिङ्गत्वमन्यत्रप्रपञ्चयिष्यते इतिदिक् ॥१३॥

हे सुरसुरानन्द ! चतुर्थ्यन्त मन्त्रघटक जो चतुर्थ **'रामाय'** पद है उससे सर्वान्तर्यामी होकर के सकल स्थावरजङ्गमात्मक प्रपञ्च को आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीराम का बोधक रामाय इस पद से भगवान् श्रीरामजी में सर्वप्रकारक बन्धुत्व सर्वप्राप्यत्व तथा सर्वमोक्षादिफलप्रापकत्व बोधित होता है ऐसा ऋषि लोग कहते हैं तथा उसी चतुर्थ्यन्त **रामाय** इस पद से भगवान् श्रीरामजी में उभयलिङ्गत्व भी प्रतिपादित होता है । अर्थात् सर्वान्तर्यामी होने के कारण सर्वत्र अवस्थित होने पर भी भगवान् में प्राकृत सकल दोष रहितत्व तथा सकल हेयप्रत्यनीक मङ्गल गुणाकरत्व रूप उभय लिङ्गत्व भी सिद्ध होता है ॥१३॥

उच्यते तत्पदेनैव सच्चिदानन्दरूपता ।

यावद्विभूतिनेतृत्वं श्रीरामब्रह्मणो मतम् ॥१४॥

अनेन चतुर्थ्यन्त रामायेति **तत्पदेनैव भगवतः परब्रह्मरूपस्य श्रीरामस्य सच्चिदानन्दरूपत्वं कथितं भवति, तथा तेनैव चतुर्थ्यन्तेन** रामायेति पदेन **यावद्विभूतिनेतृत्वं नायकत्वमपि कथितं भवति । अर्थात् 'रमन्ते योगीनो यस्मिन् सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परंब्रह्मभिधीयते' इत्यादि श्रीरामतापनीयादिश्रुतिस्तथा 'सत्यंज्ञानमानन्दं ब्रह्म' 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतिप्रतिपादिता या सत्यज्ञानादिरूपता भगवती विद्यते सा रामायेति पदेन तस्मिन् श्रीरामे एवा**

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

भिव्यञ्जिता । एवं लीलाविभूतिभोगविभूतिप्रकृतत्रिपाद्विभूतेर्नायकत्वमपि भगवतो रामस्य परब्रह्मरूपस्य प्रतिपाद्यते श्रीरामविभूतिस्वरूपन्तु श्रीबोधायन मतादर्शादवधेयम् ॥१४॥

'रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते' [जिस अनन्त सच्चिदानन्द परमात्मा में योगी लोक रमण करते हैं। इस कारण से श्रीरामपद के परम ब्रह्म परमात्मा ही कहे जाते हैं ।] एतदर्थक श्रीरामाय इस चतुर्थ्यन्त रामपद से परब्रह्म श्रीरामजी में सच्चिदानन्दत्व का कथन किया जाता है । एवं, 'सत्यं ज्ञानमानन्दंब्रह्म' इत्यादि अनेक श्रुति स्मृत्यादि सिद्ध सच्चिदानन्द रूपता का श्रीरामजी में चतुर्थ्यन्त **रामाय** पद से बोधित होता है । तथा लीलाविभूति सहित त्रिपाद विभूति का नायकत्व भी रामाय पद से श्रीरामजी में कहा जाता है ॥१४॥

रागादि कारणे बन्धौ तेनैव विनिवर्त्त्यते ।
बन्धुत्त्वप्रतिपत्तिश्च भासमाना विचारतः ॥१५॥

हे सुरसुरानन्द ! अविचारितो मिथ्याज्ञानेन यथा शुक्तिकादौ स्वेच्छेऽधिकरणे रजतं प्रतिभासमानं भवति वस्तुतस्तु न तत्र रजतम् । तथैव बन्धौ भ्रातृपुत्रकलत्रादिवान्धवेषुरागादिकारणवशात् जायमानबन्धुत्वप्रकारको निश्चयः तेनैव सर्वप्रकारकश्रीरामे बन्धुत्वप्रतिपादकेनैव चतुर्थ्यन्त रामायेति पदेनैव विनिवर्त्त्यते पराक्रियते । अयं भावो यथा रज्वादौ रज्जुत्वाज्ञानेन सर्पबुद्धिर्भवति, तावदेवयावदज्ञानं भवति जातेतु वस्तुतत्वज्ञानेऽज्ञानवलप्राप्तं रज्जुतदीयज्ञानं च स्वकारणज्ञानविनाशाद्विनिवृत्तं भवति, तथैव प्रकृतमिथ्याज्ञान मूलरागादिकारणजनितपुत्रकलत्रादिषु जायमानबुधुत्वज्ञानं चतुर्थ्यन्त श्रीरामपदेनैव विनिवारितं भवति । यतश्चतुर्थ्यन्तश्रीरामपदं सर्वप्रकारकबन्धुत्वं श्रीराम भिन्ने विनिवारयत् श्रीरामे एव प्रतिपादयतीति श्रीरामादन्यत्र भार्यापुत्रादौ मिथ्याज्ञानेन संजातबन्धुत्वंप्रति कारणाभावात्स्वयमेव निवर्तते ॥१५॥

हे सुरसुरानन्द ! रागादि के कारण से माता पिता पुत्र कलत्रादिक स्वजनों में विचार के बिना अर्थात् अज्ञान मूलक जो बन्धुत्व स्वकीयत्व ज्ञान है वह भगवान् श्रीराम में सर्वप्रकारक बन्धुत्व प्रतिपादक **रामाय** इस चतुर्थ्यन्त पद से विनिवृत्त हो

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

जाता है अर्थात् भगवान् श्रीराम ही सर्वप्रकारक बन्धु है इसका प्रतिपादक **रामाय** पद से अविचार द्वारा जायमान कलत्रादि में बन्धुत्व व्यापार निवृत्त हो जाता है ॥१५॥

तच्चतुर्थ्या सानुरूपकैंकर्यप्रार्थनोच्यते ।

विषयान्तरसेवापि प्राप्ता सा विनिवर्त्यते ॥१६॥

अथ चतुर्थीविभक्त्यन्तरामपदेन श्रीरामे सर्वविधबन्धुत्वं प्रतिपाद्य तथा तदन्यकलत्रपुत्रादौ रागप्राप्तबन्धुत्वमपि विनिवर्त्य संप्रति श्रीरामपदोत्तरश्रूयकाण चतुर्थी विभक्त्या यदुच्यते तत्प्रदर्शयितुमुपक्रमते तच्चतुर्थ्या सानुरूपेत्यादि । **चतुर्थ्या श्रीरामपदोत्तरश्रूयमाणचतुर्थ्येकवचनङेविभक्त्या 'सानुरूपकैङ्कर्य प्रार्थना' अर्थात् जीवस्याधिकारानुगुणप्राप्ता या सर्वप्रकारकबन्धुरूपश्रीराम परब्रह्मणः कैङ्कर्यं सेवा तस्याः समुत्कृष्टप्रार्थनायाः स्वरूपं तेनैव प्रतिपाद्यते, यावान्ममाधिकारस्तदनुकूलं भगवत्सेवा मे भवतु इति प्रार्थनैव चतुर्थ्या निर्दिष्ट भवति । यद्यपि 'सेवाश्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत्' इत्यादिना सेवा-कार्यस्य निषेधात् तादृशसेवाया विधानं नोचितम्, तथापि भगवत्सेवाभिन्न सेवाया एव यथोक्तस्मृत्या निषेधात् 'अयाज्ययाजनं कृत्वा जायते ग्राम्यशूकारः' इतिवत् । तथा रागवशात् विषयान्तरे श्रीरामव्यतिरिक्तब्रह्मेन्द्रादिप्रभृतिनां देवता न्तराणामितरमनुष्यादीनाञ्च या सेवा प्राप्ता सापि चतुर्थीविभक्त्या विनिवार्यते । अर्थात् यदि सेवाकरणीया तदा सर्वप्रकारबन्धुरूपस्य सर्वनियामकसर्वेश्वरश्री रामस्यैव तदन्यदेवतादीनां सेवा नकर्त्तव्येति नियमविधिः फलति । श्रीरामसेवा या विधिबोधितत्वात्तदन्यसेवाया रागप्राप्तत्वादिति सा विषयान्तरसेवा निवर्त्य ते । अतो निरादृत्य मातापितरं प्रवजन्ति श्रीरामभक्ताः 'रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् । यश्च रामं न पश्येत्तु यश्च रामो न पश्यति । निन्दितः स भवेल्लोके स्वात्माप्येनं निगर्हते, इत्यादिश्रीवाल्मीकीयश्रीमद्रामायणोक्तेः ॥१६॥**

रामाय घटक प्रकृतिभूत श्रीरामपद से भगवान् श्रीरामजी में सर्वविधबन्धुत्व का तथा तदन्य माता-पिता में रागप्राप्त बन्धुत्व की निवृत्ति का प्रतिपादन करके तदनन्तर श्रीराम पदोत्तर श्रूयमाण चतुर्थी विभक्ति से जिस वस्तु का प्रतिपादन होता है उस वस्तु का प्रतिपादन करने के लिए उपक्रम करते हैं **'तच्चतुर्थ्या सानु रूपेत्यादि ।' राम** पदोत्तर श्रूयमाण चतुर्थी विभक्ति से अर्थात् चतुर्थ्येक वचन ङे

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

प्रत्यय से स्वानुरूप कैङ्कर्य की प्रार्थना का अर्थात् स्वकीय अधिकार के अनुकूल नतु प्रतिकूल परम ब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी के अनूरूप कैंकर्य की प्रार्थना याचना का प्रतिपादन किया जाता है। तथा श्रीराम भिन्न ब्रह्मादिक देवों का रागवशात् प्राप्त जो सेवा तादृश सेवा का निवर्तन किया जाता है। अतएव भगवान् के अनन्य प्राचीन कालिक तथा वर्तमान में भी अनेकों महात्मागण ब्रह्मादिक देवों की तो क्या कथा ? माता-पिता की रागतः प्राप्त सेवा का परित्याग करके प्रव्रजित हो गये तथा होते हैं। तदुक्तं 'प्रव्रजन्त्यकृतोद्वाहा परवैराग्यमाश्रिताः' इत्यादि। अर्थात् **रामाय** यहाँ चतुर्थी विभक्ति जो है वह श्रीरामातिरिक्त वस्तु में प्राप्त सेवा की निवृत्ति का प्रतिपादन करती हुई सार्थिका होती है। इस विषय का विशेष निरूपण अन्यत्र किया जायगा यहां केवल निदर्शन मात्र है ॥१६॥

पदेन नेनात्रतु पञ्चमेन प्रकथ्यतेऽथो तदनन्यशेषता ।
हेयं तदन्यार्थ्यमपि स्वतन्त्रता निवर्त्यतेऽतःसततं स्वकीया ।१७।

रामायेति पदपर्यन्तपदानां व्याख्यानं कृत्वा नमः पदस्य सखण्डतामवलं व्य पञ्चम नमः घटक 'न' पदस्यार्थं विवरितुमुपक्रमते 'पदेननेनात्रतुपञ्चमेन' इत्यादि। अथ रां रामाय चतुर्थपदस्य ङे विभक्तिरूपस्यार्थकरणानन्तरम् पञ्च मेन नेन नकारेण अर्थात् नमः पूर्वाक्षरनकारेण तदनन्यशेषता कथ्यते, न अन्य स्य शेषस्तदनन्यशेषः तस्य भगवतो रामस्यानन्यशेषस्तदनन्यशेषस्तस्य भावस्त दन्यशेषतेति कथ्यते हेयं त्याज्यं तदन्यार्थं तदन्यप्रयोजनकत्वम् त्याज्यमिति कथ्यते। अतः स्वकीया स्वतन्त्रता सततं सर्वदैव सर्वत्रापि यथास्यात् निवर्त्यते जीवस्य स्वकीयशरीरादावपि स्वातन्त्र्यं विनिवर्तितं भवति। यदिदं मम देहगेहा दिकं तत्सर्वं भगवत एव न तत्रमनागपि स्वातन्त्र्यमस्तीति निषेधार्थकनञा वोध्यते।

'भजामि सीतापतिमेव केवलम् रटामि सीतापतिमेव केवलम्।
श्रयामि सीतापतिमेव केवलम् प्रयामि सीतापतिमेव केवलम् ॥'

इत्याचार्योक्तेर्व्यज्यते ॥१७॥

षडक्षर महामन्त्र घटक नमः में यहाँ पाँचवां अक्षर जो न है उसका अर्थ बतलाने के लिए उपक्रम करते हैं **'पदेन नेनात्र तु पञ्चमेन'** इत्यादि।

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

हे सुरसुरानन्द प्राचीन महर्षियों ने पाँचवां पद जो 'न' है उससे जीव को परब्रह्म भगवान् श्रीरामजी के तदनन्य शेषतारूप से एकमात्र विनियोग के योग्य कहा है। तथा उनसे अतिरिक्तों के प्रयोजन को त्याज्य बतलाया है। इसलिए स्वकीय स्वतन्त्रता का सर्वदा निराकरण किया है। अर्थात् जीव की स्वतन्त्रता नहीं है ॥१७॥

पदेन षष्ठेन म इत्यनेन स्वस्वाम्यनन्यार्हकशेषतापि ।
समुच्यते चेतन वाचिना तु तत्किङ्करत्वैकफलत्वमेव ॥१८॥

चेतनवाचिना-चैतन्यं धर्मज्ञानं तादृशधर्मज्ञानं घटादिविषयकं विद्यते यस्य स चेतोज्ञानाधिकरणं जीवः तादृशजीवस्य वाचकेन बोधकनमः पदघटकेन षष्ठेन मकारात्मकेन मन्त्रस्थपदेन, स्वस्वाम्यनन्यार्हकशेषतापि समुच्यते प्रज्ञाप्यते स्वस्य जीवस्य स्वाम्यनन्यार्हशेषता अर्थात् परमेश्वरानन्यार्हशेषत्वं जीवस्य प्रतिपादितं भवति। परमेश्वरमात्रस्य शेषता जीवेऽस्ति न तदन्यस्य शेषतेत्यर्थः। एतादृशानन्यार्हशेषताजीवनिष्ठा षष्ठ पदेन बोधिता भवतीति। ततो भगवत् किङ्करैकफलत्वमेव तस्य परमेश्वरस्य किङ्करः तत्किङ्करः तस्यभावस्तत्वम् तदेवैकं मुख्यं फलं यस्य जीवस्य स तथा, तस्यभावस्तत् किङ्करैकत्वफलत्वमिति एवशब्देनान्यकैङ्कर्यं व्यवच्छिद्यते ॥१८॥

हे सुरसुरानन्द ! प्राचीन आचार्य लोग चेतन जो जीव तादृश जीव का वाचक जो छठवां 'मः' पद उससे जीवमात्र को भगवान् श्रीसीतानाथजी का कैङ्कर्यत्व सेवकत्व ही एकमुख्य फल-प्रयोजन मानते हैं। इसी को स्वस्वामिभाव निरूपित अनन्यार्ह शेषता कहते हैं। अर्थात् यह जो जीव है वह अन्य का नहीं किन्तु केवल भगवान् श्रीरामजी का ही विनियोग्य है ॥१८॥

उपयार्थपरेणासावखण्डनमसोच्यते ।
उपायो हि मवाच्यस्य रवाच्यो राम एव सः ॥१९॥

नमः शब्दस्य सखण्डतामवबुध्य तत्र नकारमकारयोः पञ्चमषष्ठपदयोरर्थं प्रदर्श्य नमः शब्दस्याखण्डार्थत्वे तदर्थं प्रतिपादयितुमाह-'उपयार्थपरेण' इत्यादि। हे सुरसुरानन्द ! अखण्डनमः शब्दस्योपायार्थवाचकत्वम्, तत्र उपायः कारणमसावर्थश्चेत्युपायार्थः तत्परः तद्बोधनेच्छया समुच्चारितस्तादृशेनोपायार्थपरेण

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

उपायार्थबोधकेन, अखण्डनमः पदेन म वाच्य जीवस्य र पदवाच्य जीवराशेः, असौ सकलकारणीभूतः श्रीराम एव इहलौकिकपारलौकिकसाध्यस्योपायः साधनम् नतु तदतिरिक्तः क्रियामात्रस्य कारणम् । एतादृशोपायत्वं हीति निश्चयेन प्रतिपादितं भवति । अपि च 'रां' इत्यनेनानन्यार्हशेषता 'रामाय' इत्यनेनानन्य भोग्यत्वं 'नमः शब्देन चानन्योपायत्वं कथितं भवति एवं च मपदवाच्यो जीवः श्रीरामायैव नान्यार्थः परमेश्वरभोग्यभूतस्तच्छेषभूतस्तदीयदास इत्येवं विजानी यात् । यद्यपि दासपदं शूद्रवाचकं न तु ब्राह्मणादेः । दासनाम तु शूद्राणामिति वचनादितिचेत् 'दासोऽहंकौशलेन्द्रस्य रामस्याऽक्लिष्टकर्मणः । हनुमान् शत्रु-सैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः' इतिश्रीमद्रामायणे तथा 'ब्रह्मदासा ब्रह्मदासा' ब्रह्म मे कितवाः' अथर्व ब्रह्मसूक्ते षष्ठाध्याये 'अरं दासो न मीढुषे पराण्याहं देवाय भूर्णयेऽनागाः' इत्यादिश्रुत्या च सर्वेश्वरश्रीरामदासातिरिक्तपरकत्वात्तस्ये तिदिक् ॥१९॥

नमः शब्द को सखण्ड भी माना जाता है तथा अखण्ड भी मानते हैं । इसमें नमः शब्द को सखण्ड अर्थात् न. अलग पद है तथा मस् अलग पद है । उसमें न पद पाँचवां है मस्. पद छठा है । इसमें सखण्ड नमः पद के अर्थ को बतला करके अखण्ड नमः पद का क्या अर्थ है उसको बतलाते हैं-'**उपायार्थपरेण**' इत्या दि । हे सुरसुरानन्द ! उपायार्थपरक साधनरूप अर्थ का वाचक अखण्ड नमः पद से सबका प्रतिपालक रक्षक भगवान् श्रीरामजी को ही म. पद प्रतिपाद्य जीव का उपाय कहते हैं । अर्थात् जीव का जितना कोई कार्य है ऐहिक वा पारलौकिक उन सबका साधन भगवान् श्रीरामजी ही हैं ऐसा प्राचीन महर्षिलोग कहते हैं ॥१९॥

बीजेनैवाथ जीवस्य स्वरूपं प्रतिपाद्यते ।
रामायेति परस्यापि चतुर्थ्या तत्फलस्य च ॥२०॥

एतावता प्रकरणेनोपर्युक्तकथितार्थस्योपसंहाररूपेण श्लोकद्वयेनार्थपञ्च कस्वरूपप्रदर्शनं करोति 'बीजेनैवाथ जीवस्य' इत्यादि । अथ अनन्तरं षडक्षर मन्त्रराजघटकबीजेन 'रां' इत्यनेन जीवस्याधिकारिणः स्वरूपं प्रतिपाद्यते चित्प दार्थस्य करणकलेवरादिभिन्नं ज्ञानानन्दादिमयं यत्स्वरूपं तदेव प्रतिपादितं भव ति । अथ च रामायेति चतुर्थ्यन्तपदावयव राम घटकप्रकृतपदेन परस्य श्रीरा

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

मात्मकपरमेश्वरस्य 'ज्ञानानन्दमयोऽमलः' इत्यादिवचनसिद्धं यत् सकलेतर विलक्षणं समाभ्यधिकविवर्जितं स्वरूपं तत्प्रतिपाद्यते । तथा रामायेत्यत्र विद्यमानचतुर्थीविभक्त्या तत्फलस्य जीवकृतकर्मणः फलं पुण्यपापादिकं सुख दुःखादिकञ्च प्रतिपादितं भवति ॥२०॥

उपायस्य त्वखण्डेन नमः खण्डेन चोच्यते ।
सखण्डेन मकारेण षष्ठ्यन्तेन विरोधिनः ॥२१॥

अथ अखण्डेन नमः शब्देनोपायस्य भगवत्प्राप्तिसाधनस्य भक्तिप्रपत्त्यादेः स्वरूपं प्रतिपादितं भवति । तथा नमः पदस्य सखण्डत्वे सखण्डे नमः पदे विद्यमानषष्ठ्यन्तमकारेण विरोधिनो भगवत्प्राप्तिविरोधिनोऽहङ्काराममकारादेः स्वरूपं प्रतिपादितं भवति । तथा च बीजादितत्तत्पदेन चेतनजीवेश्वरतत्प्राप्त्युपायफलविरोधिरूपपदार्थपञ्चकस्य प्रतिपादनं श्लोकद्वयेनकृतमिति संक्षेपः । एतदीयप्रपञ्चस्तुपण्डितसम्राट् स्वामीश्रीवैष्णवाचार्यकृतार्थपञ्चकग्रन्थतोऽनुसन्धेयः ॥२१॥

हे सुरसुरानन्द महर्षियों ने कहा है कि षडक्षर जो **'रां रामाय नमः'** मन्त्रराज है तद्घटक जो **'रां'** इत्याकारक बीज है । तादृश बीज से जीव के स्वरूप का प्रतिपादन होता है । तथा **रामाय** में जो प्रकृतिरूप श्रीरामपद है तादृश श्रीरामपद से परब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी के स्वरूप का प्रतिपादन होता है । और श्रीरामपदोत्तर विद्यमान **जो चतुर्थीविभक्ति** है उससे जीव द्वारा सम्पादित जो शुभाशुभ कर्म हैं उनके फल के स्वरूप का प्रतिपादन होता है । तथा अखण्ड **नमः** पद से उपाय का भगवत् प्राप्ति में जो साधन हैं भक्ति प्रपत्ति वगैरह उसके स्वरूप का प्रतिपादन किया जाता है । और **नमः** पद को सखण्डता पक्ष में नमः पद घटक षष्ठ्यन्त मकार से भगवान् की प्राप्ति में जो विरोधी अहङ्कार ममकार हैं उनका स्वरूप प्रतिपादित होता है ॥२०।२१॥

तात्पर्यार्थोऽशेषवेदशास्त्राभिरुचिसंश्रयः ।
वाक्यार्थः प्राप्यसम्बन्धिः स्वरूपाभिनिरूपणम् ॥२२॥
तारकस्यप्रधानार्थः स्वस्वरूपनिरूपणम् ।

Scanned by CamScanner ankurnagpati08@gmail.com

सम्बन्धस्यानुसन्धानमनुसन्ध्यर्थ इष्यते ॥२३॥

योऽयं तारकाख्यो मन्त्रराजः तस्यतात्पर्यार्थः कः को वा वाक्यार्थः ? कश्च प्रधानार्थः ? को वा अनुसन्धानार्थ इत्यपेक्षायां प्रथमतो मन्त्रराजस्य षट् पदार्थान् अर्थपञ्चकञ्च प्रदर्श्य तात्पर्यार्थादिकं दर्शयितुं प्रकरणमुपसंहरन्नाह-तात्पर्यार्थोऽशेषवेदेत्यादि । तारकषडक्षरमन्त्रराजस्य तात्पर्यार्थः 'अशेषवेदशास्त्राभिरुचिसंश्रयः, अशेषाणां सर्वेषां वेदानां तदनुयायिनां शास्त्राणां हितानुशासकानाम् । अभिरुचेरभिप्रायस्य संश्रयः एव तारकमन्त्रराजस्य तात्पर्यार्थ इष्यते । एवं प्राप्यस्य जीवेनेति शेषः श्रीरामचन्द्रस्य यद्विलक्षणं ज्ञानानन्दमयलक्षणं स्वरूपं तादृशस्य निरूपणं प्रतिपादनमेव तारकषडक्षरमन्त्रराजस्य वाक्यार्थो ज्ञातव्यः, भगवत्स्वरूपप्रतिपादनमेव वाक्यार्थः । तथा स्वस्वरूपस्य ईश्वरशेषरूपजीवस्वरूपस्य करणकलेवरादिविलक्षणस्य निरूपणं प्रतिपादनमेव मन्त्रराजस्य प्रधानार्थ इष्यते । एवं जीवस्य तथा परमात्मनश्चैतदुभयोरनेकप्रकारकसम्बन्धस्यात्मात्मीयादिकस्य कथितप्रायस्य सम्बन्धस्यानुसन्धानमेवानुसन्धेयार्थ इष्यते ।

तदत्र जगद्गुरुश्रीगङ्गाधराचार्यकृतश्लोकानुसन्धेयाः-

'सर्वेषां वेदशास्त्राणां रुचेश्च संश्रयो हि यः ।
स एव मन्त्रराजस्य तात्पर्यार्थो मतो बुधैः ॥

प्राप्यस्य रामचन्द्रस्य स्वरूपस्य निरूपणम् ।
वाच्यार्थो राममन्त्रस्य रहस्यज्ञैः प्रभाषितः ॥

जीवात्मनः स्वरूपस्य यच्चात्र प्रतिपादनम् ।
तदेव मन्त्रराजस्य प्रधानार्थतया मतम् ॥

सम्बन्धार्थावबोधो यो जीवात्मपरमात्मनोः ।
तत्र हि मन्त्रराजस्यानुसन्धानार्थता मता । इति ॥२२-२३॥

गत प्रकरण से तारकमन्त्रराज, 'रां रामाय नमः' इसके छ पदार्थ का तथा पाँच संक्षिप्त पदार्थ का निर्वचन करके अग्रिम श्लोकद्वय से तारकमन्त्रराज का तात्पर्यार्थ वाक्यार्थ प्रधानार्थ तथा अनुसन्धानादिक अर्थ को बतलाने के लिए उपक्रम करते हैं **तात्पर्यार्थ** इत्यादि हे सुरसुरानन्द ! महर्षिलोग कहते हैं कि-सकल वेद तथा

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

तदनुयायि शास्त्र हितानुशासकों को जो अभिरुचि है तादृश अभिप्राय विशेष का आश्रय ही मन्त्रराज का तात्पर्यार्थ है। अर्थात् सकल वेद स्मृति इतिहास पुराणों का पर्यवसान जिसमें है वही षडक्षर मन्त्र का तात्पर्यार्थ है। और परमप्राप्य सर्वेश्वर भगवान् श्रीराम जी षडक्षर तारक महामन्त्र का वाक्यार्थ हैं। तथा जीव का जो देहादि विलक्षण स्वरूप है उसका समुचित रूपसे प्रतिपादन करना यही मन्त्रराज का प्रधान अर्थ है। एवं जीवात्मा तथा परमात्मा के जो अनेक प्रकारक शेषशेषीभावादिक पूर्व प्रदर्शित सम्बन्ध हैं, उन सम्बन्धों का अनुसन्धान करना ही मन्त्रराज का अनुसन्धेयार्थ है। इसप्रकार से प्राचीनाचार्य लोग निरूपण करते हैं ॥२२।२३॥

卐 अथ मन्त्ररत्नरहस्यम् 卐

उक्त्वेत्थं तारकार्थं तु द्वयार्थः प्रतिपाद्यते ।

विमत्सराः प्रपश्यन्तु प्रगृह्णन्त्ववयन्तु च ॥२४॥

अथ प्रथमरहस्यान्तर्गततारकमन्त्रस्य विशदरूपेणार्थं प्रतिपाद्य द्वितीय रहस्यं व्याख्यातुमुपक्रमते। अर्थात् प्रथमे रहस्ये 'जाप्यस्तत्तारकाख्य' इत्यारभ्य तारकस्य प्रधानार्थप्रतिपादकान्तप्रकरणं विशेषरूपेण प्रतिपाद्य तदनन्तरं द्वयमन्त्रस्य विस्तररूपेणार्थं दर्शयितुमुपक्रमते 'उक्त्वेत्थम्' इत्यादि। इत्थं पूर्वकथितप्रकारेण तारकार्थम् तारकाख्यषडक्षरमन्त्रराजस्य विस्तृतरूपेणार्थमुक्त्वा कथयित्वा तु पुनः द्वयार्थः द्वयनामकमन्त्रस्यार्थो विस्तृतरूपेण प्रतिपाद्यते कथ्यते तदुक्तं द्वयमन्त्रार्थं विमत्सराः सर्वथामत्सररहिताः सरलहृदयाः द्वेषरहिता इत्यर्थः प्रपश्यन्तु समीचीनतया जानन्तु विचारयन्तु ततस्तमेवार्थं गृह्णन्तु स्वीकुर्वन्तु। तथा तमेवार्थम् अवयन्तु तस्यैव ध्यानं कुर्वन्तु तदुक्तं-'श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्राय नमः' इति श्रीरामद्वयाख्यमन्त्रस्यार्थम् विचारयन्तु स्वीकुर्वन्तु स्वीकृत्य तदर्थस्य ध्यानं कुर्वन्तु स्वजीवनं सफलयन्तु च ॥२४॥

परमपूज्य चरण श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज '**जाप्यस्तत्तारकाख्य**' यहाँ से प्रारंभ करके, तारक प्रधानार्थ एतत्पर्यन्त प्रकरण से षडक्षर मन्त्रराज का विशद व्याख्यान करके तदनन्तर '**श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्राय नमः**' इस द्वय मन्त्र का विस्तृत व्याख्यान करने के लिए उपक्रम करते हैं- '**उक्त्वेत्थम्**' इत्यादि। हे सुरसुरानन्द ! 'जाप्यस्तत्तारकाख्यः' यहाँ से लेकर

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

'तारकस्यप्रधानार्थः' एतदन्त श्लोकों से षडक्षर '**रां रामाय नमः**' इस मन्त्रराज के अर्थ का प्रतिपादन किया अब द्वयमन्त्र '**श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्राय नमः**' के अर्थ का मैं प्रतिपादन करता हूँ। अतः विमत्सर रागद्वेषरहित होकर के द्वयमन्त्र के अर्थ को जानो तथा जान करके उस मन्त्र का ग्रहण करो और उस मन्त्र से प्रतिपाद्य इष्टदेव का ध्यान करो मन्त्र का निरन्तर जप करो अर्थात् श्रवण मनन निदिध्यासन करो ॥२४॥

श्रीरामद्वयमन्त्रमद्भुततमं वाक्यद्वयंषट्पदम्
वाणाक्षिप्रमिताक्षरन्तु खलु विद्धित्वंदशार्थान्वितम् ।
युक्तं तत्त्रिपदैस्तु तत्र सुमते पूर्वं शुभस्यास्पदं
वाक्यं पञ्चदशाक्षरं तदनुदिग्वर्णात्मकं तूत्तरम् ॥२५॥

वक्ष्यमाणद्वयमन्त्रघटकवाक्यपदवर्णादिनां तत्र न्यूनाधिकतानिरासाय तथा तेषां वर्णादिनां स्वरूपविज्ञापनाय तद्घटकवाक्यादीन् दर्शयितुमुपक्रमते 'श्रीरामद्वय' इत्यादि । हेसुमते सुरसुरानन्द ! त्वं श्रीरामद्वयमन्त्रमुक्तस्वरूपकं खलुनिश्चयेन वाक्यद्वयं विद्धि । कीदृशं वाक्यद्वयं तत्राह षट्पदयुक्तम् अर्थात् षट् संख्याकानि पदानि यस्मिन् वर्तमानानि सन्ति तादृशम् बाणाक्षिभिः पञ्चविंशतिसंख्यया प्रमितानि संमितानि अक्षराणि यस्मिन् तत् बाणाक्षिप्रमिताक्षरम् पञ्चविंशतिवर्णघटितानीत्यर्थः । तथा दशार्थान्वितम्पुरुषकारलक्षणश्रीसीतादिभिर्दशभिरर्थैयुक्तमिति दशार्थान्वितम् । तत्र द्वयोर्वाक्ययोर्मध्ये आद्यं यद्वाक्यम् श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये' इत्याकारकम् तत् पञ्चदशवर्णैर्घटितम्। तथा श्रीसीतादिदशभिरर्थैः समन्वितम्। सुवन्ततिङन्तसमुदायात्मकं पूर्वार्द्धं तत्त्रिभिः पदैरन्वितं तद्विशिष्टम् । पुनः कीदृशं पूर्ववाक्यम् तत्राह पञ्चदशवर्णैयुक्तम् । तथा शुभास्पदं शुभस्यमोक्षस्यास्पदं स्थानम् । तदनुतत्पश्चात् विद्यमानं श्रीमतेरामचन्द्राय नमः इति तु दिग्वर्णात्मकम् दशसंख्याकवर्णेन युक्तं शुभास्पदं च भवतीतिसारः ॥२५॥

इसके बाद द्वयमन्त्र घटक तत्तद्वर्ण तथा वर्णसमुदाय पद के अर्थ को बतला करके मन्त्र में अवश्य ग्राह्यत्व को बतलाने के लिए कहते हैं-**श्रीरामद्वयमन्त्रेत्यादि**

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

हे सुतीक्ष्ण बुद्धिक सुरसुरानन्द ! सकल श्रुतिस्मृति प्रभृतिक शास्त्र समुदाय के वास्तविक अभिप्राय को जाननेवाले सांप्रदायिक महापुरुष कहते हैं कि दो वाक्य छः पद पञ्चविंशति वर्णो से द्वय मन्त्र युक्त है। और जिस में श्रीसीताजी पुरुषकार का अर्थ रूपसे है। उनका भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के साथ में नित्य संबन्ध है। इत्यादि दश अर्थ से युक्त है। तो परमकारण भगवान् के चरणकमल में मन को लगा देने के कारण बहुत शीघ्र अधिकारी को अत्याश्चर्योत्पाद इस द्वय मन्त्र से निदर्शन प्राप्त हो जाता है ऐसा महर्षिगण ने कहा है।

जिस भगवान् श्रीरामजी के आश्चर्यजनक द्वयमन्त्र मे दो वाक्य है उन में से एक तो '**श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये**' यह है। तथा द्वितीय वाक्य है '**श्रीमते रामचन्द्राय नमः**' इन द्वयमन्त्र में जो प्रथम वाक्य है वह शुभगुण-मोक्ष का आश्रय स्थान है। तीन पद से युक्त है तथा पन्द्रह अक्षर वर्णवाला है। तथा जो द्वितीयवाक्य है वह भी तीन पद तथा दश अक्षरवाला है। शुभगुण मोक्ष का स्थान आश्रय है ऐसा तुम समझो, इसमें श्रद्धा करो ॥२५॥

सर्वाधीशेश्वरस्यास्मिर्हेतुरत्राभिधीयते ।
सीतापुरुषकारार्था श्रीत्यनेन पदेन तु ॥२६॥

अथ द्वयमन्त्रगतवाक्यपदवर्णविभागं पूर्वं प्रदर्शितवान् तदनुवाक्यार्थ ज्ञाने पदार्थज्ञानस्य कारणत्वस्यान्यत्रावधारितत्वेन वाक्यार्थबोधोत्पादनाय तादृशवाक्यान्तर्गततत्तत्पदानामर्थं प्रतिपादयितुमाह-'सर्वाधीशेत्यादि । अयमाशयः 'पदज्ञानंतु करणं द्वारं तत्र पदार्थधीः । शाद्बबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सहकारिणी' इतिनियमः । शाद्बबोधात्मककार्योत्पादनाय प्रथमं पदज्ञानम्, तत एक सम्बन्धिज्ञानमपरसम्बन्धिनं बोधयतीति घटादिपदज्ञानान् कंवुग्रीवादिमत्वरूपा र्थस्योपस्थितिर्जायते, ततः आकांक्षायोग्यतादिकरणबलेन वाक्यार्थज्ञानरूप शाब्दबोधः समुत्पद्यते । पदज्ञानात् यत्पदार्थोपस्थितिः सा वृत्तिज्ञानसहकृतपद जन्यैव अन्यथा घटादिपदेन कारणवशात् आकाशरूपार्थस्मरणे जाते तस्यापि शाब्दबोधापत्तेरित्येवंक्रमेण पदार्थज्ञानात् वाक्यार्थज्ञानं भवतीति मनसिनिधाय वाक्यद्वयात्मकद्वयश्रीराममन्त्रस्यार्थं निरूपणाय प्रथमं तादृशवाक्यद्वयघटितप दानामर्थं दर्शयितुमाह 'सर्वाधीशेत्यादि ।'

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

अत्र श्रीरामस्य द्वयाख्यमन्त्रे श्रीतिपदेन पुरुषकारोऽर्थः प्रयोजनं यस्याः पुरुषकारार्था श्रीसीता या च भक्तस्य काठिन्यं प्रयोजनं च श्रीरामाय श्रावयति सैव श्रीपदेन कथिता भवति कीदृशी सा श्रीसीता तत्राह 'सर्वाधीश' इति, सर्वस्य ब्रह्माद्यारभ्यस्तम्भपर्यन्तपदार्थमात्रस्ययोऽधीशः स्वामीश्रीसीतापतिः तस्य श्रीसीतापतेः प्राप्ते हेतुः कारणम् । एतदुक्तं भवति आश्रितभक्तजनदोषान् शृणाति विनाशयति या सा श्रीः अथवा भक्तजनस्य प्रार्थनां स्वयं शृणोति श्रीरामाय वा श्रावयतीति सा श्रीः । एतादृशी श्रीपदवाच्या श्रीसीता श्रीपदेन कथिताः श्रीरामप्राप्तौ कारणमितिभावः ॥२६॥

वाक्यार्थबोध शाब्दबोध में पदार्थबोध कारण होता है । क्योंकि पद ज्ञान द्वारा जब तक पदार्थ का कंबुग्रीवादिमत्वादि रूप अर्थ का स्मरण नहीं होता है तब तक पद समुदाय रूप 'घटमानय' इत्यादि वाक्य से घटानयनादि कार्य को मध्यम वृद्ध नहीं जान सकता है । इसलिए वाक्यार्थ बोध में कारणीभूत पदार्थों का स्मरणादि रूप ज्ञान के उत्पादन करने के लिए प्रथमतः आचार्यजी उस बात को जानने केलिए उपक्रम करते हैं **'सर्वाधीश'** इत्यादि । हे सुरसुरानन्द ! भगवान् श्रीरामजी का जो द्वय मन्त्र है उसमें सर्वप्रथम जो श्रीपद है उस श्रीपद से सर्वाधीश ब्रह्मविष्णु महेशादिक जीवों का अधीश्वर श्रीरामचन्द्र जी हैं उनकी प्राप्ति करने में कारण पुरुषार्थ स्वरूप श्रीसीतादेवी के स्वरूप का वर्णन किया जाता है । इस प्रकार से प्रथम पद के अर्थ का निर्वचन किया गया है ॥२६॥

मता पुरुषकारस्य नित्यसम्बन्ध उच्यते ।
रामचन्द्रेति पदतो वात्सल्यादिगुणस्य च ॥२७॥

तत्र द्वयमन्त्रघटकप्रथमश्रीपदस्यार्थं प्रतिपाद्य द्वितीयस्य मतुप्प्रत्ययस्या र्थमभिधातुमुपक्रमते 'मता पुरुषकारस्य इत्यादि तत्र मता-मतुप्प्रत्ययेन अयं मतुप्प्रत्यय भूमनिन्दा प्रशंसा नित्ययोगातिशयसम्बन्धरूपार्थेषु विनियुज्यमानो भवतीति, यथोक्तलक्षणकमतुप्प्रत्ययेन 'अनन्या च मया सीता भास्करेण प्रभा यथा 'इतिवचनेन प्रदीपतदीयप्रकाशयोरिव जातिव्यक्त्योर्नित्यसम्बन्धवत् वा परमकारणेन श्रीरामेण सह श्रीसीताया नित्ययोगो नित्यसम्बन्धो मतुपा उच्यते कथितो भवति । तथा तृतीयेन श्रीरामचन्द्रेति पदेन श्रीरामस्य वात्सल्यादिगुणस

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

मुदाय उच्यते प्रितिपाद्यते । तत्र वात्सल्यं नाम-स्वाश्रितप्रपन्नदोषाणामसम्मर्तृत्वल क्षणमेव अर्थात् प्रपन्नः सदोषो भवतु निर्दोषो वा तदविगणैय्य तस्य साहाय्य करणम् । तदुक्तं श्रीमद्रामायणे-'न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया' इति । अन्ये तु स्वाश्रितापराधतिरस्कारबुद्धिरेवेति । तदुक्तं भागवते 'अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्रइवद्विज ? साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः । नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना' इत्यादिकं विभावनीयम् । आदिशब्देन भगवतः स्वामि त्व, सौशिल्य सौलभ्य, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व, दया, कृपा, अनुकम्पा, करुणा वत्व, सौन्दर्य, सौहार्द, क्षमाप्रभृतयोऽनुसन्धेयाः । ते च जगद्गुरुश्रीमधुराचार्य कृतः श्रीभगवद्गुणदर्पणनामकप्रबन्धतः पण्डितसम्राट्स्वामीश्रीवैष्णवाचार्य कृतः श्रीभगवद्गुणषोडशीतोऽनुसन्धेया विशेषार्थिभिः ॥२७॥

हे सुरसुरानन्द ! द्वय श्रीराममन्त्र घटक जो प्रथम मन्त्रान्तर्गत श्रीपदोत्तर में विद्यमान मतुप्प्रत्यय है उस मतुप्प्रत्यय से पुरुषकार स्वरूप जो भगवती श्रीसीताजी हैं, उन श्रीसीताजी का भगवान् दशरथनन्दन श्रीरामजी के साथ जाति व्यक्ति के समान नित्य सम्बन्ध है । यहाँ मतुप्प्रत्यय नित्य योगार्थक है । और 'श्रीमद्रामचन्द्र चरणौ' यहाँ जो 'रामचन्द्र' पद है, इस रामचन्द्र पद से भगवान् सर्वेश्वर परमात्मा श्रीकोशलेन्द्र सरकार में वात्सल्यादि अनन्त कल्याण गुणों का नित्य सम्बन्ध है, ऐसा ऋषि लोग कहते हैं । यहाँ वात्सल्यादि पद से वात्सल्य स्वामित्व सुशीलता अतिसुलभता सर्वतत्त्व सर्वशक्ति दया कृपा अनुकम्पा करुणा सौहार्द और क्षमा इत्यादि जो भगवान् श्रीरामजी के अनन्त कल्याण गुण समुदाय हैं उन सबका आदि पद से ग्रहण होता है । इसमें वात्सल्य शब्द का यह अर्थ होता है कि-जो भगवान् श्रीरामजी के आश्रित व्यक्ति हैं उनके अन्दर जो क्रूरत्व मुर्खता जाति से नीचता प्रभृतिक दोष हैं, उनका स्मरण न करना ऐसा श्रीमद्रामायण में कहा है-'न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया' इत्यादि । अथवा स्वाश्रित व्यक्तिगत जो अपराध हैं तादृश अपराध में तिरस्कार बुद्धि को वात्सल्य कहते हैं ऐसा कहा है-'अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इवद्विज ! । साधुभिर्ग्र स्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः' इत्यादि । इसी तरह सौशील्य, सौहार्द क्षमादिक भगवान् के गुणों का साम्प्रदायिक महापुरुषों से जानना । यहाँ संक्षेप किया गया है ॥२७॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

चरणावित्यनेनैव वात्सल्यादिकसीतयोः ।
विलक्षणस्य दिव्यस्य विग्रहस्याश्रयस्य च ॥२८।

स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः ।
सीतामुवाचातियशा राघवञ्च महाव्रतम् ॥

इतिश्रीमद्रामायणे तथा-

यत्पादुकार्चनपरो भरतोऽतिभक्त्या यद् दर्शनावधिबहिर्नगरादतिष्ठत् ।
आदेशमाप्य तत एव प्रजाः शशास सोऽन्तः स्फुरत्वविरतं मम राघवाङ्घ्रिः ।

इति च श्रीराघवाङ्घ्रिवर्णने देशिकसम्राट् जगद्गुरुश्रीसदानन्दाचार्योक्त दिशा ये ये गत्यर्थास्ते ते प्राप्त्यर्था इतिशब्दशास्त्रीयनियमात् चरति प्रापयति स्वाश्रितसर्वजनान् चतुर्वर्गादिकमिति गत्यर्थकश्चरधातोर्निष्पन्नद्वितीयान्तचरण शब्देन वात्सल्यादिकसीतयोः श्रीरामवद्वात्सल्यादिगुणविशिष्टाया श्रीजनकन न्दिन्या आश्रयस्य नित्यसम्बन्धः प्रोच्यते चरणावित्यनेनैव च-

'यथा रामस्तथाऽहं च भेदः कश्चिन्न चावयोः'
सर्वेश्वरी यथा चाहं रामः सर्वेश्वरस्तथा
षड्गुणो भगवान् रामः षड्गुणाहं स्वभावतः'
'सर्वफलप्रदौ चावां नित्यौ च सर्वशेषिणौ'
'मम विना वदन् रामं रामं विना वदंश्च माम् ।
वदत्यावां यतश्चावामभिन्नावेव सम्मतौ'

इत्यादिश्रीवशिष्टसंहितोक्तप्रकारेण विलक्षणानन्तदिव्यश्रीविग्रहाश्रयत्वं नित्यसम्बन्धत्वञ्च प्रोच्यतेऽतः सर्वकामेप्सुभिः श्रीरामचन्द्रचरणावाश्रयणीया वितिभावः ॥२८॥

हे वत्स ! चरणौ पदसे वात्सल्यादिक अनन्तगुण तथा श्रीसीताजीका आश्रय रूप श्रीरामचन्द्रजी का विलक्षण अनन्त दिव्य श्रीविग्रह है उसका एकत्व प्रतिपादन किया जाता है ऐसा श्रीवशिष्ठ प्रभृतिक पूर्वाचार्य का मत है ॥२८॥

शरणेतिपदेनैवोपायस्तद्विग्रहो बुधैः ।
उपायाध्यवसायस्तु प्रपद्य इति वर्ण्यते ॥२९॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

हे सुरसुरानन्द ! बुधैर्विद्वद्भिः मन्त्रघटकशरणेति पदेन तद्विग्रहो भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य विग्रहस्तदीयो देहं शरीरमुपायः सर्वाधारस्य परमात्मनो देहादभिन्न एव भगवतः प्रापकोऽर्थाद् भगवत्प्राप्तेरुपायः कारणं भवतीति शरणं पदेनाभि व्यक्तं भवति, तथा 'प्रपद्ये' इति पदेन तादृशभगवद्विग्रहस्योपायभूतस्याध्यवसायो दृढनिश्चय एव प्रपद्येन क्रियापदेन वर्णितो भयति । तत्र भगवद्विग्रहोभगवत्प्राप्तौ कारणं ध्यानविषयतया, ततश्चभगवत्स्वरूपनिश्चयो भगवत्प्राप्तौ कारणमिति 'प्रपद्ये' इतिक्रियापदेनैवोक्तं भवतीति भावः ॥२९॥

हे सुरसुरानन्द ! द्वयमन्त्रघटक **'शरण'** इस पद से परमात्म स्वरूप भगवान् श्रीकोशलेन्द्रसरकार के विग्रह शरीर को प्राप्य श्रीरामजी की प्राप्ति का उपाय विद्वान् लोग कहते हैं । यद्यपि स्वप्राप्ति का उपाय स्व हों ऐसा देखने में अन्यत्र नहीं आता है । तथापि भगवद्विग्रह को भगवत्प्राप्ति में उपाय कथन का यह अभिप्राय है कि भगवत्स्वरूप का जो अनुचिन्तन है, वह भगवत्प्राप्ति में उपाय है, प्रापक है । योग सूत्रकार ने कहा है-'यथाभिमतध्यानाद्वा' 'तज्जपस्तदर्थानुभावनम्' इति । और मन्त्र में जो **'प्रपद्ये'** इत्याकारक क्रिया पद है उस क्रिया पद से तादृश उपाय का अर्थात् परमात्मा स्वरूप श्रीरामचन्द्रजी के प्रापक जो भगवद्विग्रह है, उस विग्रह का दृढ निश्चय कर भगवान् के स्वरूपानुचिन्तन ही प्राप्ति का साधन है; एतादृश अविपरीत निश्चय ही प्राप्ति कारण है ऐसा जो ज्ञान उसको प्रपद्ये पद बतलाता है ऐसा प्राचीन श्रीपराशरादिक विद्वान् महापुरुषों ने कहा है ॥२९॥

प्राप्यं मिथुनमेवेति श्रीमते पदतो मतम् ।
रामचन्द्रेति पदतः स्वामित्वं प्रतिपाद्यते ॥३०॥

हे सुरसुरानन्द ! द्वयश्रीराममन्त्रघटकद्वितीयवाक्ये 'श्रीमते' इति पदतः अर्थात् श्रीमते इति चतुर्थ्यन्त पदेन मिथुनं श्रीसीतारामस्वरूपमेव मुमुक्षुभिः साधनेन प्राप्यं भवतीति मतम्, महर्षीणाम् । अर्थात् साधनसाध्यं श्रीसीताराम स्वरूपमेव, तत्प्राप्यैव कृतार्थो भवतीति मुनीनां मतमिति ! तथा 'रामचन्द्रेति पदतः' रामचन्द्रपदेन तु तस्य श्रीरामस्य प्राप्यस्य सर्वं प्रतिस्वामित्वमिति प्रति पादितं भवतीति रहस्यविदामाचार्याणां मतम् । नात्र केवलं श्रीराम एव प्राप्यः किन्तु प्रभाप्रभावतोरिव युगलमूर्तिरेव प्राप्याविति । यद्यपि श्रीरामप्राप्तौ तन्नित्य

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

संवद्धा श्रीसीतापि प्राप्तैव स्यात्, तयोर्नित्यसम्बन्धत्वात्, तथापि तत् स्फुटी करणायैव पुनस्तदुक्तिरितिभावः ॥३०॥

प्रियशिष्य ! द्वितीय मन्त्र घटक **श्रीमते** चतुर्थ्यन्त इस पद से श्रीसीतारामजी की युगल मूर्ति स्वरूप ही प्राप्य है, अर्थात् अशेष साधनों से प्राप्य है, ऐसा महर्षिगण कहते हैं। भगवान् श्रीसीतारामजी के विग्रह का चिन्तन उपाय है। तथा तादृश विशिष्ट ज्ञानानन्दादिमय जो स्वरूप है वह प्राप्य है और **रामचन्द्र** पद से भगवान् श्रीरामजी में सर्वजीव निरूपित स्वामित्व है ऐसा प्रतिपादन होता है। ऐसा प्राचीन आचार्यों ने कहा है जो कि श्रुत्यादि समर्थित है ॥३०॥

विभक्त्यायेति पदतः शेषवृत्तिर्महात्मभिः ।
विरोधिनो निरासस्तु नमः पदेन वर्ण्यते ॥३१॥

हे वत्स ! रामचन्द्रेतिनामोत्तरचतुर्थीविभक्त्येकवचनङेस्थानिकादिश्यमा न आय, इति श्रूयमाणविभक्त्या, शेषवृत्तिर्व्यापारः, सर्वशेषिणो रामस्य शेष लक्षणजीवानां वृत्तिर्व्यापारोवर्णितो भवति, इति महात्मभिर्वर्ण्यते कथ्यते। तथा द्वयाख्यद्वितीयान्तिमनमः पदेन नम इत्याकारकपदेन विरोधिनो भगवतो राम स्य परब्रह्मणः प्राप्तये विरोधिनोऽहङ्काराममकारादिककामक्रोधादयस्तेषां निरासो वर्ण्यते प्रतिपाद्यते । अर्थात् 'शान्तोदान्त उपरतस्तितिक्षुः श्रद्धावित्तोभूत्वा आत्मन्येवात्मानं पश्येत्' इत्यादिश्रुतिवचनेन शान्त्यादिगुणानामधिकारिनिष्ठाना मुपासनाङ्गत्वप्रतिपादनेन अर्थतः कामक्रोधादीनां भगवत्प्राप्तौ प्रतिबन्धकत्वमा यातीति यावत्कामादीनां निवृतिर्नस्यात्तावद् भगवत्प्राप्तेराशादुराशैवेत्यतः तन्नि वृत्तेरुपवर्णनं नमः पदं कुर्वन् चरितार्थो भवतीति महात्मभिरुपवर्णितमिति संक्षे पो विस्तरस्त्वन्यत्रावधेयः ॥३१॥

महर्षिलोग '**रामचन्द्राय**' में जो आय है अर्थात् रामचन्द्र इस प्रकृति से विहित जो चतुर्थी एकवचन ङे विभक्ति है तादृश ङे के स्थान में आदिश्यमान व्याकरण परिभाषा से '**आय**' है, उससे सर्वशेषी भगवान् श्रीरामजी वा शेष रूप जो जीव समुदाय हैं उन जीवों के व्यापार का प्रतिपादन किया जाता है ऐसा मुनिलोग कहते हैं। और मन्त्र का जो चरमपद **नमः** शब्द है, उस नमः पद से भगवान् की प्राप्ति होने में जो विरोधी अहङ्कार ममकार से जायमान क्रोध कामादिक पदार्थ हैं उन

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

कामादिकों के अभाव का प्रतिपादन किया जाता है । क्योंकि कार्यमात्र के प्रति प्रतिबन्धाकाभाव कारण होता है । अतः जबतक प्रतिबन्धक रहता है तबतक कार्य नहीं होता है । ऐसा दाहादि स्थल में मणिविगेरे को देखा गया है । इसलिए भगवत् विरोधी के अर्थात् कामादिकों का अभाव का प्रतिपादक नमः पद है ऐसा मुनिलोगों ने कहा है ॥३१॥

तात्पर्यार्थोस्य विज्ञेय आचार्यरुचिसंश्रयः ।
वाक्यार्थो मन्त्ररत्नस्य त्वथ निर्णीयते बुधैः ॥३२॥
प्राप्यप्रापकसम्बन्धस्वरूपाभिनिरूपणम् ।
प्रधानार्थस्तु यद्युग्मकैङ्कर्यस्य प्रधानता ॥३३॥
स्वदोषाभ्यनुसन्धानमनुसन्ध्यर्थ उच्यते ।
एवमेवानुसन्ध्येयं मोक्षकामैरहर्दिवम् ॥३४॥

अथ 'श्रीमद्रामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमते रामचन्द्राय नमः' इति द्वयमन्त्रस्य कः तात्पर्यार्थः ? कश्च वाक्यार्थः ? कश्च प्रधानार्थः ? कोवाऽनुसन्धानार्थः इतिजिज्ञासमानंप्रति तत्तत्स्वरूपं प्रतिपादयितुमुपक्रमते-'तात्पर्यार्थोऽस्य' इत्यादिश्लोकत्रयम् । तत्र बुधैः साम्प्रदायिकविद्वभिः आचार्यरुचिसंश्रयः आचार्याभिप्रेतश्रीरामद्वयमन्त्रस्य तात्पर्यो निर्णीयते तथा प्राप्यप्रापकसम्बन्धस्वरूपाभिनिरूपणम् एतदपि निर्णीयते अर्थात् तत्र प्राप्यो भगवान् श्रीरामः प्रापको जीवराशिः तयोः जीवपरमात्मनोः यः सम्बन्धस्तस्य तथा जीवपरमात्मनोः स्वरूपस्य च प्रतिपादनम् एष एव तु वाक्यार्थः तदपि निर्णीयते । तद् युग्मस्य श्रीसीतारामस्य यत्कैङ्कर्यं सेवा तस्याः श्रीसीतारामसेवायाः प्रधानता तदेव प्रधानार्थः सोपि निर्णीयते । तथा स्वदोषाभ्यनुसन्धानम् स्वस्य जीवस्य स्वकीयदोषाणां रागमोहादीनामनुसन्धानं सर्वदाविचारणमनुसन्ध्यर्थोऽनुसन्धानार्थ उच्यते कथ्यते । मोक्षकामनावद्भिः पुरुषधौरेयैः, एवमेव यथोक्तप्रकारेणैव अहर्दिवं सन्तत मनुक्षणमनुसन्धेयमनुसन्धातुं योग्यं विचारणीयम् । मोक्षकामैरनुसन्ध्यातव्यमिति कथितम् ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

तत्र मोक्षप्रकारोऽनेकप्रकारको मतभेदेन निरूपितस्तथाहि तत्र चार्वाका देहविनाशमेवमोक्ष इति वदन्ति । जैनास्तु निरावरण एवमोक्षः । सिद्धशिलाप्राप्तिर्वा । एकविंशतिदुःखप्रध्वंसोवेति न्यायविदः । लिङ्गभङ्गोवेति केचित् । अविद्यया निवृत्तिर्वेत्यन्ये । स्वस्वरूपावस्थानमिति केचन । चिच्छक्तिर्वेति सांख्यवृद्धाः । परमानन्दस्वरूपो वा मोक्ष इति विशिष्टाद्वैतिनः । सर्वेश्वरश्रीरामकैङ्कर्यप्राप्तिरेवमोक्ष इति श्रीपराशरादिमुनयस्तदनुयायिमहर्षिश्रीपुरुषोत्तमाचार्यबोधायनप्रभृतिकाः श्रौतविशिष्टाद्वैतमतप्रवर्धका इच्छन्ति । तदुक्तम् 'विष्णोरनुचरत्वं हि मोक्षमाहुर्मनीषिणः' इति । श्रीमद्रामायणे-कुरुष्वमामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते । कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थं प्रकल्पते' इति । स्कान्दे च

'द्वयाख्यं रामचन्द्रस्य मन्त्ररत्नमनुत्तमम् ।
पञ्चविंशाक्षरं विद्वान् स याति परमाङ्गतिम् ॥' इति ।

तदाह श्रुतिः-प्रथमं श्रीमदिति ततो रामचन्द्रचरणाविति ब्रूयात् । अनन्तरं शरणमिति पदं पश्चात्प्रपद्ये इति वदेत् । पुनश्च श्रीमते इति, अथ रामचन्द्रायेति तदग्रे नम इति यो दाशरथेर्द्वयाख्यं मन्त्राणां प्रवरं मन्त्ररत्नमधीते, स सर्वान् कामानश्नुते विपश्चित्तेन सह मोदते इति ।'

यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाश्च ब्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये' इति च ।

भगवता व्यासेन मन्त्ररत्नव्याख्यानरूपमेव निबद्धमधस्तनीयश्लोकं भागवते-

'यस्याऽमलं नृपसदः सुयशोऽधुनाऽपि
गायन्त्यघघ्नमृषयोदिगिभेन्द्रपट्टम् ।
तन्नाकपाल वसुपाल किरीटजुष्टं
पादाम्बुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये ॥'

इति व्याख्यातञ्च जगद्गुरुश्रीगङ्गाधराचार्येण-

'मर्यादापुरुषोत्तमस्य लीलाप्रयोजनमतिसमासेन प्रदर्शयन् स्वशरण्यत्वाच्छरणं गच्छति-यस्यामलमित्यादि ।' ततश्च सर्वानुग्राहकसर्वेश्वरश्रीरामशरणागतस्यतदनुग्रहेण गुणाष्टकाविर्भावरूपस्वस्वरूपावाप्तिरूपमोक्षप्राप्तिर्भवतीति । तदत्र जगद्गुरुश्रीगङ्गाधराचार्याः-

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

वैष्णवाचार्यवर्याणां यो रुचेः संश्रयो हि सः ।
मन्त्रज्ञैर्मन्त्ररत्नस्य तात्पर्यार्थः समीहितः ॥
प्राप्यप्रापकयोर्यच्च निरूपणं स्वरूपयोः ।
तदेव मन्त्ररत्नस्य वाक्यार्थो बुधसम्मतः ।
कैङ्कर्यस्य प्रधानत्वं श्रीसीतारामयोश्च यत् ।
मन्त्ररत्नस्य तत्प्राज्ञैः प्रधानार्थतया मतम् ॥
स्वीयदोषानुसन्धानं क्रियते साधकेन यत् ।
तत्र च मन्त्ररत्नस्यानुसन्धानार्थता मता ॥ इत्याहुः ।
एतादृशमोक्षकामैः साधुभिः सर्वदैव द्वयमन्त्ररत्नमेवोपासनीयमिति संक्षेपः ॥३२-३३-३४॥

भगवान् श्रीरामजी जगत्कारण सर्वज्ञ का जो द्वयमन्त्र हैं उस मन्त्र का स्वरूप तथा तद्घटक पदों का अर्थ कहकर अग्रिम श्लोकत्रय से द्वयमन्त्र का तात्पर्यार्थ वाक्यार्थ प्रधानार्थ तथा अनुसन्धानार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिए उपक्रम करते हैं-'**तात्पर्यार्थोऽस्य**' इत्यादि । हे सुरसुरानन्द ! सम्प्रदाय को विशेष रूपसे जाननेवाले विद्वान्, आचार्य की जो आज्ञा है तादृश आज्ञा का पालन करना ही इस द्वयमन्त्र का तात्पर्यार्थ है ऐसा कहते हैं तथा परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी तथा शेष लक्षण जीवात्मा का जो सम्बन्ध है उस सम्बन्ध का तथा स्वरूप का निरूपण करना यही इस द्वयमन्त्र का वाक्यार्थ है । श्रीसीताराम रूप जो युगल मूर्ति हैं उनके सेवा की प्रधानता ही प्रधानार्थ है ऐसा कहते हैं । तथा जीव स्वकीय सकल दोषों का पूर्ण रूपसे अनुसन्धान करे, यही द्वयमन्त्र का अनुसन्धेयार्थ है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं । जो मोक्ष कामनावाले व्यक्ति हैं उन लोगों से इसीप्रकार से यह द्वयमन्त्र अनुसन्धान करने के योग्य है अर्थात् जप करने के योग्य है । यह मोक्ष यद्यपि मतभेद से अनेक प्रकारक है तथापि '**विष्णोरनुचरत्वं हि मोक्षमाहुर्मनीषिणः**' इस वचन के अनुसार श्रीपराशरादि मुनिलोग भगवत्कैङ्कर्य को ही मोक्ष कहते हैं । अतः कैङ्कर्यत्व लाभ ही मोक्ष है । यद्यपि सालोक्य, सामीप्य, सारुप्य और सायुज्य नामक चार मोक्ष का प्रकार है तथापि इन चारों में कैङ्कर्य की ही प्रधानता रहने से भगवान् की निरन्तर सेवा ही परममोक्ष है ऐसा महर्षिलोग कहते हैं इति संक्षेपः ॥३२-३३-३४॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

卐 अथ चरममन्त्ररहस्यम् 卐

प्रोक्तावत्सक ! मन्त्ररत्नविवृतिः सन्मानसाभिष्टदं-
सद्वेद्यं सकृदित्यवेहि चरमं निर्णीतवाक्यार्थकम् ।
रामीयं हि तदीयमन्त्रनिरतैरुद्बोधनीयं परं-
द्वात्रिंशत्प्रमिताक्षरं मनुपदं द्व्यर्द्धं जगद्विश्रुतम् ॥३५॥

तदित्थं पूर्वोक्तप्रकारेण द्वितीयं रहस्यं विस्तारपूर्वकमर्थसहितं प्रतिपाद्य तदनुतृतीयं रहस्यसार्थसविस्तरं प्रतिपादयितुमुपक्रमते श्रीआचार्यः-'प्रोक्तावत्सक' इत्यादि । हे वत्सक सुरसुरानन्द ! द्वयाख्यमन्त्ररत्नस्य विवृतिर्विवरणं प्रोक्ता कथिता सर्वं प्रतिपादितम् निर्णीतवाक्यार्थकम् । रामीयं रामस्येदं श्रीरामात्प्राप्तम् सकृत् 'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते' इत्यादिचरमश्लोकमन्त्रमतः परं शृणुः । कीदृशं तन्मत्रं तत्राह-'सद्वेद्यम्-महात्मभिर्ज्ञातुं योग्यम् तथा सन्मानसाभीष्टदम्-सतां मनोभिलषितफलप्रदायकम् रामीयं श्रीरामसम्बन्धिश्रीरामादागतमित्यर्थः तन्मन्त्रनिरतैराचार्यैरेव उद्बोधनीयमुब्दोधयितुं योग्यम् द्वात्रिंशत् प्रमिताक्षरं द्वात्रिंशदक्षरयुतम् । पुनः मनुमितानि चतुर्दशसंख्यकानि पदानि यस्मित्तादृशम् । द्व्यर्द्धं द्विखण्डकम् जगद्विश्रुतं जगत्प्रसिद्धं चरमं मन्त्ररत्नमिदमितिभावः ॥३५॥

पूर्व कथित प्रकार से द्वितीय रहस्य का विवेचन करके तदनन्तर वक्ष्यमाण श्लोकों से तृतीय रहस्य विवेचन करने के लिए आचार्यश्री उपक्रम करते हैं-'**उक्तावन्सक**' इत्याकारक । हे वत्सक सुरसुरानन्द ! मन्त्ररत्न द्वय मन्त्र श्रीराममन्त्र का व्याख्या न हो गया । और '**सकृदेव प्रपन्नाय**' इत्यादिक जो चरम मन्त्र है जोकि बत्तीस वर्ण चौदह पदों से तथा पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध दो खण्डों से प्रमीत युक्त है । सज्जन पुरुषों के मनोभिलषित फल को देनेवाला है एवं सज्जन महापुरुषों से ही जानने के लायक है । और जिसका वाक्यार्थ निर्णीत है । एतादृश मन्त्ररत्न को तुम सुनो ! श्रीराममन्त्र में निरत परमभक्त को ही इसका उपदेश देना इतर को नहीं ॥३५॥

अत्रोपायान्तरस्याथो निवृत्तिः प्रतिपाद्यते ।
सकृदित्येवकारेण तूपायनिरपेक्षता ॥३६॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

अथ चरममन्त्रघटकपदानां विचारं कृत्वा तदनुतेषां पदानां तत्तदर्थान्-प्रतिपादयितुमुपक्रमते-'अत्रोपायान्तरस्य' इत्यादि । अथ तृतीयरहस्यान्तर्गतपदविचारानन्तरम्, आत्रान्तिमे तृतीयरहस्यान्तर्गतचरममन्त्रे सकृदित्याकारकप्रथमपदेन, उपायान्तरस्य प्रयत्नातिरिक्तयागादिकारणान्तरस्य निवृत्तिः प्रतिषेधः प्रतिपाद्यते कथ्यते, पुरुषार्थप्रापकयागादिहेतूनुपेक्ष्य भगवत्प्रपत्तिः शरणागतिरेव धर्मादीनां कारणभूतेत्यर्थः । एवकारेण एवेत्यव्ययपदेन, मन्त्रघटकद्वितीयपदेन, देवतान्तरोपासनाकारणयागादिसाधनानां भगवदुपासनायां निरपेक्षत्वमेव प्रतिपाद्यते प्रपत्तिमात्रं प्रकृतेकारणं नततो व्यतिरिक्तं कारणान्तरं मन्त्रोपयोगि इति भावः ॥३६॥

चरम मन्त्र घटक पदों का विचार करके तदनन्तर तत्तत्पदार्थों का विचार करने के लिए उपक्रम करते हैं-'**अत्रोपायान्तरस्य**' इत्यादि । अथ वर्ण पद का विचार करनें के वाद इस चरम मन्त्र घटक सकृत् इस पद से प्रपत्तिभिन्नोपाय यागादिकों की निवृत्ति का प्रतिपादन किया जाता है । तथा द्वितीय पद जो एवकार है उससे अन्य देवोपासन यागादिकों का निरपेक्षत्व बतलाया जाता है अर्थात् सर्वोपाय निरपेक्ष प्रपत्ति मात्र भगवत्प्राप्ति में कारण है ॥३६॥

प्रपन्नायेति पदतस्तूपायस्थानमुच्यते ।
उपायत्वं भगवतस्तवेति पदतस्तथा ॥३७॥

चरममन्त्रघटकप्रथमद्वितीयपदयोरर्थं प्रतिपाद्य तृतीयचतुर्थपदयोरर्थं दर्शयितुमुपक्रमते-प्रपन्नायेति पदतः' इत्यादि । चरममन्त्रघटकतृतीयेन चतुर्थीविभक्त्यन्तप्रपन्नायेति पदेन, उपायस्थानमाश्रय इत्युच्यते । यः प्रपत्तिं स्वीकरोति तादृशोपासकाय उपायस्य वक्ष्यमाणषड्प्रकारकशरणागतिरूपस्य परमोपायस्य तिष्ठति यस्मिन्निति स्थानमर्थादाश्रय इत्युच्यते प्रतिपादितो भवति । तथा तवेति पदतः-तवेत्याकारकपदेन यथात्वं कृपयाभूत्वा तेजसा महितौजस । जुष्ट ईशगुणैः सर्वैस्ततोसि भगवान् प्रभुः' इत्यादिवचनेन कृपादिसकलगुणाकरो भगवान् श्रीरामएव सकलफलप्रदाता उपाय इति कथितो भवति, प्रपत्तिं सफलयितुं स सर्वेश्वरसर्वाधारश्रीराम एव परमोपाय इतिसारः ॥३७॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

चरम मन्त्र घटक जो तृतीय पद प्रपन्नाय है तादृश तृतीय पद से उपाय अर्थात् वक्ष्यमाण जो छ प्रकार की शरणागति है उसके स्थान-आश्रय का प्रतिपादन किया जाता है। तथा षष्ठ्यन्त तव इत्याकारक चतुर्थ पद से परमात्मा श्रीकोसलेन्द्र सरकार को ही उपाय रूपसे कथन किया जाता है ॥३७॥

अस्मीत्यनेन चोपायस्वीकारः प्रतिपाद्यते ।

समाप्त्यर्थेति शब्देन तूपायानन्यतोच्यते ॥३८॥

हे सुमते सुरसुरानन्द ! अस्मीत्याकारकपञ्चमपदेन उपायस्य स्वीकारः प्रतिपाद्यते कथितो भवति। तथा समाप्त्यर्थबोधकेन षष्ठेति पदेन उपायानन्यता, उपायस्य प्रतिपत्तेरनन्यता कथिता भवति, यदि किञ्चिद्भगवत्प्राप्तौ उपायो विद्यते तदा षट्विधप्रपत्तिरेव नतु तद्व्यतिरिक्तं भगवत्प्राप्तिसाधनं विद्यते इति समाप्त्यर्थकेति पदेन बोध्यते । प्रपत्तेः षड्भेदा वक्ष्यमाणास्ते तत एव द्रष्टव्याः ॥३८॥

हे सुरसुरानन्द ! श्रीसम्प्रदाय के वास्तविक स्वरूप को जाननेवाले जो विद्वान् महापुरुष हैं वे लोग '**अस्मि**' इत्याकारक मन्त्रघटक पञ्चम पद से भगवत् प्राप्ति के उपाय के स्वीकार को कहते हैं। और समाप्ति अर्थ का वाचक जो इति शब्द छठ वाँ है उस षष्ठ पद से प्रपत्ति अर्थात् षड्विध शरणागति की अनन्यता को कहते हैं। अर्थात् शरणागति व्यतिरिक्त उपायान्तर का निषेध कहा जाता है ॥३८॥

चकारतोऽनुक्तसमुच्चयार्थतोनिगद्यते त्वन्य उपाय आत्मवित् ।

उपाय संसेव्यधिकारिलक्षणं पदेन वै याचत् इत्यनेन तु ॥३९॥

हे आत्मवित् सुरसुरानन्द ! सम्प्रदायमन्त्रतत्वविद्भिः पुरुषैः अनुक्तसमुच्चयार्थकेन अकथितस्याप्यर्थविशेषस्य वाचकसप्तमश्लोकघटक च पदेन, अन्यो मानसिकप्रपत्तिव्यतिरिक्तकायिकवाचिकप्रपत्तिरूप उपायः कथ्यते इति तैः कथ्यते । तथा 'याचते' इत्यष्टमपदेन तु उपायानुष्ठातुरधिकारिणो लक्षणं स्वरूपं प्रतिपादितं भवतीति साम्प्रदायिका वदन्तीतिभावः ॥३९॥

हे आत्मज्ञानी सुरसुरानन्द ! साम्प्रदायिक श्रीसम्प्रदायानुयायी विद्वान् लोग

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

कहते हैं कि अनुक्त समुच्चयार्थक अकथित अर्थ को भी समझानेवाला जो श्लोक घटक सप्तम च पद है उससे (प्रपत्ति तीन प्रकार की है मानसिक, वाचिक तथा कायिक) त्रिविध प्रपत्ति के अन्तर्गत प्रथम मानसिक प्रपत्ति शरणागति से भिन्न जो कायिक वाचिक प्रपत्ति शरणागतिरूप उपाय है उसका प्रतिपादन किया जाता है।

तथा श्लोक में जो '**याचते**' इत्याकारक अष्टम पद है। तादृश अष्टम याचते पद से तीनों प्रकार के मानसिक कायिक तथा वाचिक शरणागति रूप उपाय का भी समीचीन रूप से अनुष्ठान करने वाले जो अधिकारी हैं तादृश अधिकारी के स्वरूप का प्रतिपादन होता है ॥३९॥

अथाभयमितिप्राप्तिप्रतिबन्धकवारणम् ।

सर्वभूतेभ्य इत्येव प्राप्यस्य प्रतिबन्धकम् ॥४०॥

अथाष्टमपदव्याख्यानानन्तरमभयमित्याकारकश्लोकघटकनवमपदेन प्राप्यप्रतिबन्धवारणम् 'प्राप्यस्य भगवतः परमात्मनो रामचन्द्रस्य प्राप्तौ, यानि कामक्रोधमयेर्ष्यादिकानि तेषां प्रतिबन्धकानां वारणं निरोधः स्वयं सर्वसमर्थेन भगवतारामेणैव क्रियते इति कथितं भवति। तथा चतुर्थी प्रत्ययान्तेन वा सर्व भूतेभ्य इति दशमपदेन प्राप्यस्य भगवतो श्रीरामचन्द्रस्य प्रतिबन्धकं निरूपितं भवति। अयंभावः भगवतो रामस्य प्राप्तौ कानि प्रतिबन्धकानि ? इति प्रश्न स्योत्तरम्, यानि कानि भूतानि सन्तिः तेभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यः प्रतिबन्धकेभ्यो भयकारणेभ्योऽहमभयं ददामीति। न केवलं विभीषणादीनामेवाभयं प्रायच्छम्, अपितु सर्वेभ्योऽतीन्द्रियादिप्राणिभ्यः परस्परप्रतिबन्धकरूपेभ्योऽपि, अभयम्, भयकारणात् जन्ममरणादिसंकुलितसंसारसागरात् निवृत्तिलक्षणं मोक्षमपियच्छामीतिभावः ॥४०॥

मन्त्र घटक अष्टम पद के व्याख्यान करने के वाद नवम पद जो '**अभय**' उसका व्याख्यान करने के लिए कहते हैं-'**अथाभयमिति**' इत्यादि। 'अभयम्' इत्यादि नवम पद से भगवान् श्रीरामजी की प्राप्ति करने में जो प्रतिबन्धक हैं काम क्रोधादिक उनका निवारण किया जाता है। तथा '**सर्वभूतेभ्यः**' इत्याकारक जो दशम पद है उससे सर्वभूत को सर्वप्राणी को ही भगवत् प्राप्ति में प्रतिबन्धक निरोधक कहा

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

जाता है-अर्थात् काम क्रोध, लोभ, मोह, भय, इर्ष्यादि नीच वृत्ति आसुरी वृत्तियों से युक्त समस्त प्राणी जीवराशि ही भगवत्प्राप्ति में विरोधी है। भगवान् श्रीरामजी मुक्त कण्ठ से कहते हैं कि मैं दाशरथी श्रीराम, मेरे शरण आये हुए शरणागत व्यक्तियों के प्रतिबन्धक आसुरी वृत्ति सम्पन्न व्यक्तियों से रक्षण करके सदा के लिए भय रहित कर देता हूँ मेरे शरण में आये हुए व्यक्तियों को मैं सर्वदा के लिए भय रहित बना देता हूँ। ऐसी प्रतीज्ञा जो है उसका निर्देश **'अभयं सर्वभूतेभ्यः'** इन पदों से कहा गया है ॥४०॥

ददामीतिपदेनाथोपायस्य सर्वशक्तिता ।

एतदित्येव पदतोऽसंशयत्वमितीर्य्यते ॥४१॥

अथ दशमपदव्याख्यानानन्तरमेकादशेन 'ददामि' इत्यनेन पदेन, उपायस्य फलप्रदायकप्रपत्तेः सर्वशक्तिता सर्वार्थसाधकत्वम् ईर्य्यते कथ्यते, अर्थात् प्रपत्याख्यं कारणं मोक्षादिसकलप्रयोजनसम्पादकमितिभगवता स्वयं कथ्यत इति। तथा द्वादशेन 'एतदिति पदेन असंशयत्वम् संशयराहित्यं पूर्वप्रतिपादितार्थेषु संशयाभावोभगवतैवेर्यते प्रतिपाद्यतेऽतः सफलोयं हेतुरितिभावः ॥४१॥

अथ पुनः दशम पद के व्याख्यान करने के वाद एकादशवाँ जो **'ददामि'** इत्याकारक पद है उससे प्रपत्ति शरणागतिरूप उपाय के फल को देनेवाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की सर्वशक्तित्व का अर्थात् सकल पालकत्व का प्रतिपादन किया जाता है। तथा **एतद्** इत्याकारक द्वादश बारहवाँ पद है तादृश पद से स्वयं भगवान् श्रीरामजी ने पूर्वोक्त सकल अर्थ प्रतिपाद्य विषय में संशय के अभाव का प्रतिपादन किया है। अर्थात् प्रपन्न भक्त के आराधना करने से मैं उसके ऊपर प्रसन्न होकर के तादृश भक्त को पूर्वोक्त समस्त अर्थ को देता हूँ। इसमें कोई भी थोड़ा भी संशय का अवकाश नहीं है।

इसमें संशय क्यों नहीं है ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् कहते हैं कि मेरा ऐसा **व्रत** है अर्थात् पूर्वकथित सकल पदार्थ को देता हूँ इसमें संशय नहीं करना क्योंकि शरणागत भक्त को सकल पदार्थ देना यह हमारा व्रत-प्रतिज्ञा है। हे सुरसुरानन्द ! यह बात स्वयं भगवान् श्रीरामजी ने कही है। तुम इसमें दृढ निश्चयी बनो

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

यह भाव है ॥४१॥

व्रतमेतत्पदेनाथो तद्दार्ढ्यमभिधीयते ।

निर्भरत्वानुसन्धानं ममेति प्रतिपाद्यते ॥४२॥

हे सुरसुरानन्द ! अथः पुनः 'व्रतम्' इत्याकारकत्रयोदशपदेन तद्दार्ढ्यं तस्य पूर्वोक्तार्थेसमस्तेऽपि संशयाभावत्वं दृढत्वमभिधीयते प्रतिपाद्यते प्राचीनैर्मुनिभिरिति । तथा 'ममेति' चरमपदेन ममेत्यनेन निर्भरत्वस्यानुसन्धानमनुचिन्तनम्, अर्थादात्मनो जीववर्गस्य निर्भरत्वमनुक्षणं म्रियमाणत्वधियमाणत्वपुष्यमाणत्वस्यानुसन्धानमनुचिन्तनम्, पूर्वाचार्यैः प्रतिपाद्यते इतिसारः ॥४२॥

द्वादश पद व्याख्यान करने के वाद '**व्रतम्**' इत्याकारक जो त्रयोदश तेरहवां पद है उस तेरहवें 'व्रत' पद से पूर्वकथित सकल अर्थ-विषय की दृढता निश्चय का कथन किया गया है। तथा '**मम**' इत्याकारक जो चौदहवां पद है उससे निर्भता के अनुसन्धान अनुचिन्तन का कथन किया गया है। निर्भरता के अनुसन्धान से यह तात्पर्य है कि भगवान् श्रीरामजी के ही ऊपर सब प्रकार का भरोसा रखो तथा भगवान् को ही धारण-पोषण करनेवाला समझो अर्थात् श्रीरामजी को ही धारकत्व पोषकत्व रूपसे उपासक सतत अनुचिन्तन करे ऐसा ऋषियों ने कहा है ॥४२॥

तात्पर्यार्थोऽस्यविज्ञेयः शरण्यरुचिसंश्रयः ।

तत्प्रापकस्वरूपस्य वाक्यार्थोऽर्थनिरूपणम् ॥४३॥

एवं यथोक्तप्रकारेण श्लोकघटकपदानामर्थान् प्रतिपाद्य तात्पर्यादिकं दर्शयितुमाह-'तात्पर्यार्थोऽस्य' इत्यादि । अस्य चरमश्लोकस्य शरण्यरुचिसंश्रयः तात्पर्यार्थो विज्ञेयः तत्र शरणे साधुः शरण्यो भगवान् श्रीरामः तस्य रुचेः प्रसन्नताया: प्रसादस्य संश्रयोऽवलम्बनं विधातव्यमिति तात्पर्यार्थः । तथा तत्प्रापक स्वरूपस्य तस्य परब्रह्मणो श्रीरामस्य प्रापकस्वरूपं तदीयप्रसन्नताया आश्रयो विग्रहस्तस्य निरूपणम् अथवा प्रापकस्वरूपम् अर्थात् पुरुषाकाररूपश्रीसीता या निरूपणमेव चरमश्लोकस्य वाक्यार्थो ज्ञातव्यः । भगवतः प्रसादस्तात्पर्यार्थः श्रीसीतास्वरूपनिरूपणं वाक्यार्थ इति भावः ॥४३॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

अन्तिम श्लोक के तत्तत्पदार्थों का निरूपण करके तदनन्तर तात्पर्यार्थ वाक्यार्थ प्रधानार्थ और अनुसन्धानार्थ का निरूपण करने के लिए आचार्य कहते हैं- **'तात्पर्यार्थोऽस्यविज्ञेय'** इत्यादि । हे सुरसुरानन्द ! दीन व्यक्ति के रक्षा करने में समर्थ भगवान् श्रीरामजी की जो प्रसन्नता उसका अवलम्बन करना यही चरम मन्त्र का तात्पर्यार्थ है । येन केन प्रकारेण भगवान् की प्रसन्नता का पात्र बनना तात्पर्यार्थ है तथा भगवान् श्रीरामजी के प्रसाद का आश्रय जो भगवान् का विग्रह है अथवा प्रपत्ति उसका निरूपण करना अथवा भगवान् के प्रापक पुरुषाकाररूप जो श्रीसीताजी हैं उनके स्वरूप का निरूपण करना यह चरम श्लोक का वाक्यार्थ है, ऐसा महर्षिगणों ने कहा है इस बात को तुम जानो ॥४३॥

प्रधानार्थः परेशस्य स्वरूपस्य निरूपणम् ।

निर्भरत्वानुसन्धानमनुसन्ध्यर्थ उच्यते ॥४४॥

इत्यानन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्ययतिराजप्रणीते श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे जप्यात्मकरहस्यत्रयनिरूपणात्मको द्वितीयप्रश्नोत्तराख्यो द्वितीयः परिच्छेदः ॥२॥

तदेवं गतश्लोकेन चरममन्त्रस्य तात्पर्यार्थं वाक्यार्थं च निरूप्य तदनु प्रधानार्थानुसन्धानार्थयोर्निरूपणायाचार्य उपक्रमते 'प्रधानार्थ' इत्यादि । हे सुर सुरानन्द ! अस्य चरममन्त्रस्य प्रधानार्थस्तु, परेशस्य भगवतो रामस्य यत्स्वरूपं स्वकीयं स्वाभाविकं ज्ञानानन्दादिलक्षणरूपं तस्य निरूपणमवधारणं निश्चयरूप एव प्रधानार्थो ज्ञातव्यः ।

तथा निर्भरत्वानुसन्धानम् परमेश्वर एव सर्वजीवराशेर्भरणपोषणरक्षणा दिकं करोतीत्याकारकार्थस्यानुक्षणमनुचिन्तनकरणमेवानुसन्ध्यर्थ उच्यते । तदा हुर्जगद्गुरवः श्रीगङ्गाधराचार्याः-'रामस्य ब्रह्मणः प्रीतेर्मनोज्ञः संश्रयश्च यः । उक्त श्चरममन्त्रस्य तात्पर्यार्थो बुधैर्हि सः ॥ प्रापकस्य च जीवस्य यत्स्वरूपनिरूपण म् । तद्धि चरममन्त्रस्य मुख्यार्थत्वेन सम्मतम् ॥ श्रीमद्रामस्य यद्रम्यं दासपोषण चिन्तनम् । तत्र चरममन्त्रस्यानुसन्धानार्थता मता' इति ।

एवं च चरममन्त्रेण सकलफलसिद्धये परमोपायलक्षणासर्वदेशिकसार्व कालिकसर्वजातिसर्वावस्थोचिता भगवतः प्रपत्तिः षट्प्रकारिका सैव प्रति

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

पादिता भवति । तदुक्तं 'आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्यवर्जनम् । रक्षिष्य तीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा । आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः' इत्यादिवचनप्रामाण्येन, आनुकूल्यसङ्कल्पप्रातिकूल्यवर्जनरक्षणादिविषयक विश्वासगोप्तृत्ववरणात्मनिक्षेपकार्पण्यभेदात् शरणागतिषट्प्रकारिका भवति। पुनश्च सा कायिकवाचिकमानसिकभेदात् त्रिधा भवति । एतद्विषये विशेषवि चारोऽन्यत्र करिष्ये ॥४४॥

हे सुरसुरानन्द ! इस चरम मन्त्र बोधक अन्तिम श्लोक का 'आत्मानन्दमयो मलः' 'सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्यादि श्रुति स्मृति पुराणादि सिद्ध सच्चिदानन्द सर्व दोषरहित सकल कल्याणगुणास्पदक जो परमेश्वर श्रीरामजी का स्वरूप है तादृश ईश्वर स्वरूप का निरूपण करना यही प्रधानार्थ है ऐसा प्राचीन ऋषियों ने कहा है। तथा भगवान् श्रीसीतानाथजी ही सकल जीव का धारण पोषण रक्षणादिक करते हैं। इस बात का निरन्तर अनुचिन्तन करना यही इस चरम मन्त्र का अनुसन्ध्यर्थ है।

इस तरह चरम श्लोक से सकल प्रयोजन के सिद्धि के लिए परमोपायरूप सर्वदेश, सर्वकाल, सर्वजाति, सर्वावस्थातीत प्रपत्ति का ही कथन किया गया है। भगवत्प्राप्ति में परमोपायरूप यह प्रपत्ति ६-प्रकार की है। तथाहि-'**आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा। आत्म निक्षेप कार्पण्ये षड्विद्या शरणागतिः**' इस वचन से आनुकूल्य का सङ्कल्प प्राति कूल्य का वर्जन, रक्षण विषय का विश्वास गोप्तृत्ववरण आत्मनिपेक्ष और कार्पण्य यह छ प्रकार का भेद प्रपत्ति शरणागति का है। पुनः प्रपत्ति कायिक वाचिक मानसिक भेद से तीन प्रकार की है। इसका विशेष रहस्य साम्प्रदायिक तात्विक विद्वानों से जानिये। इस तरह कि जाप्यं यह जो श्रीसुरसुरानन्दाचार्यजी का द्वितीय प्रश्न था, उसका निरूपण आचार्यजी ने किया ॥४४॥

卐 श्रीमते रामचन्द्राय नमः 卐

द्वितीयो हि परिच्छेदो व्याख्यया पूर्णतां गतः ।
अनेन कोशलाधीशः प्रीयतामिति मे मतिः ॥

❋ शुभं भवतु सर्वजगतः ❋

卐 श्रीरामः शरणं मम 卐

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

卐 अथ ध्याननिरूपणात्मकं तृतीयप्रकरणम् 卐

अथोच्यते महाप्राज्ञ ध्यानं ध्येयस्य चिन्तनम् ।
बुधैरात्मपरैर्नित्यं जितप्राणैर्जितेन्द्रियैः ॥१॥

एतावता सपरिकरेण गतप्रकरणेन संसारसागरपारमिच्छद्भिर्विरक्तैरनुष्ठेय त्वेनाभिमतं मोक्षप्रापकं रहस्यत्रयात्मकं जाप्यं मन्त्रस्वरूपं निरूप्य तदनुध्यान विषयकं तृतीयं प्रश्नमुत्तरयितुं ध्यानस्वरूपप्रतिपादनायोपक्रमते 'अथोच्यते महा प्राज्ञ' इत्यादि । हे महाप्राज्ञ सुरसुरानन्द ! अथ रहस्यत्रयरूपपरमजाप्य मन्त्रराज स्य निरूपणानन्तरंध्येयस्य ध्यातुं योग्यस्य परमात्मनः श्रीरामस्य बुधैर्विलक्षण बुद्धिशालिभिर्विद्वद्भिर्नित्यमनवरतम्, चिन्तनमेवानुस्मरणमेवध्यानं कथितम् । कथं भूतैर्बुधैस्तत्राह-'जितप्राणैर्जितेन्द्रियैः' **इति जितानि बाह्येन्द्रियाणियैर्वशी कृतेन्द्रियाणीत्यर्थः पुनः जितप्राणैः प्राणायामपरायणैः तथाऽत्मरतैः परमात्मन्य नुरागवद्भिरिति ॥१॥**

'**किं जाप्यम्**' इत्याकारक द्वितीय प्रश्न का समाधान करके, '**किं ध्यानम्**' इत्याकारक तृतीय प्रश्न का समाधान करने के लिए आचार्य उपक्रम करते हैं '**अथो च्यते**' इत्यादि । हे महाप्राज्ञ सुरसुरानन्दाचार्य ! जिन्होंने इन्द्रिय के ऊपर जय प्राप्त कर लिया है, तथा प्राणायामपरायण है । और सर्वदा परमात्मा सम्बन्धी निरतिशय प्रेम युक्त हैं । एतादृश विद्वानों के ध्येय परमकारणरूप भगवान् श्रीरामजी का जो अनवरत स्मरण है उसीको ध्यान कहते हैं उस विषय को कहता हूँ सुनो ॥१॥

विकचपद्मदलायतवीक्षणं विधिभवादिमनोहरसुस्मितम् ।
जनकजाद्दगपाङ्गसमीक्षितं प्रणतसत्समनुग्रहकारिणम् ॥२॥
मुनिमनः सुमधुव्रतचुम्बितस्फुटलसन्मकरन्दपदाम्बुजम् ।
बलवदद्भुतदिव्यधनुः शरामहितजानुविलम्बिमहाभुजम् ॥३॥
परार्ध्यहाराङ्गदचारुनूपुरं सुपद्मकिञ्जल्कपिसङ्गवाससम् ।
लसद्घनश्यामतनुं गुणाकरं कृपार्णवं सदुहृदयाम्बुजासनम् ॥४॥
प्रसन्नलावण्य सुभृन्मुखाम्बुजं जगत्शरण्यं शरणं नरोत्तमम् ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

दयापरं दाशरथिं महोत्सवं स्मरामि रामं सह सीतया सदा ॥५॥

द्विभुजस्यैव रामस्य सर्वशक्तेः प्रियोत्तम !

ध्यानमेवं विधातव्यं सदाराम परायणैः ॥६॥

इत्यानन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्ययतिराजप्रणीते श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे ध्याननिरूपणात्मकस्तृतीय प्रश्नोत्तराख्यस्तृतीयः परिच्छेदः ॥३॥

ध्यानस्वरूपमाह-विकचेत्यादि **विकचपद्मदलायतवीक्षणम्-प्रफुल्लित कमलपत्रवत् विशाललोचनयुक्तम्** 'विधिभवादिमनोहरसुस्मितम्-**तत्र विधिर्ब्रह्मा भवः शिवः आदिपदात् शेषादिस्तेषामपीषद्धासेनैवमनोहरहासयुक्तम्** । जनकजा दृगपाङ्गसमीक्षितम्, **जनकजा सीता तस्यानेत्रकोणेन सदा सादरेण दृष्टम्** 'प्रणत सत्समनुग्रहकारिणम्' **प्रणतिं कुर्वतां सतां प्रपन्नानामुपरि अनुग्रहकुर्वाणं दयापरं प रमदययासदायुक्तं श्रीसीतया च सुशोभितं दशरथापत्यं द्विभुजं श्रीरामं सदाहं स्म रामि तैलधारावदविच्छिन्नप्रत्यक्षसमानाकारज्ञानविषयं करोमीत्यग्रेण सम्बन्धः** । मुनिमनः **इत्यादि, मुनीनां मनांसि मुनिमनांसि तान्येव सुशोभनाः भगवच्चरण** चिह्नचिन्तकत्वेन रसज्ञा मधुव्रताभ्रमरास्तादृशभ्रमरैरास्वादितं विकसितं लसन्म करन्दं पदाम्बुजं यस्य तादृशम् । 'बलवदद्भुतदिव्यधनुः शरामहितजानुविलम्बि महाभुजम्' अनेकप्रकारकबलशक्तिसम्पन्नौ सोन्दर्यादिगुणेन मनोहरौ दिव्यौ शार्ङ्गधनुर्बाणाभ्यासादासमन्तात्पूजितौ जानुपर्यन्तं लम्बायमानौ महाबाहू यस्य तादृशम् 'परार्ध्यहाराङ्गदचारुपूपुरम्' अमूल्यमाल्याङ्गदमनोहरनूपुरधारिणम् 'सुप द्मकिञ्जल्कपिसङ्गवाससम्' मनोजकमलकिञ्जल्कसदृशपीतवस्त्रधारिणम् । 'लस द्घनश्यामतनुम्' नीलमेघवद् श्यामलशरीरम्, अनन्तकल्याणगुणसागरम् कृपा याः समुद्ररूपम् । 'सद्हृदयाम्बुजासनम्' प्रपन्नहृदयकमलरूपासनवन्तम् । प्रसन्न लावण्यसुभृन्मुखाम्बुजम्' लावण्यमनुक्षणम् अभिनवसौन्दर्यं तद्युक्तं प्रसन्नमुख कमलम् ।

जगत्शरण्यं शरणे समागतविश्वजनपालकम्, शरणं सकलब्रह्माण्डस्य रक्षकम्, महोत्सवं सर्वदैवविलक्षणमहोत्सवेन युक्तम् । नरोत्तमं नरश्रेष्ठं परमात्मा नम् श्रीरामं श्रीसीतयासहस्मरामि । हे प्रियोत्तम सुरसुरानन्द ! द्विभुजस्य नतु

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

चतुर्भुजस्य सर्वशक्तिसम्पन्नस्य श्रीरामचन्द्रस्य श्रीरामपरायणैः श्रीरामसेवकैः सदैव ध्यानं विधातव्यं कर्तव्यमिति ॥२-६॥

卐 इति प्रभाटीकायां तृतीयपरिच्छेदः 卐

भगवान् श्रीरामजी का ध्यान करना चाहिए संसार सागर से उद्धृत होने के लिए, ऐसा कहा गया है। इसमें कीदृश श्रीरामरूप का ध्यान करना ? इस जिज्ञासा के उत्तर में आचार्यजी ध्येय स्वाभिलषितरूप को बतलाने के लिए कहते हैं **'विकच पद्मदलायतेत्यादि'** हे सुरसुरानन्द ! विकसित पद्मदल प्रफुल्लित कमलदल के समान आयत लङ्कायमान नेत्र-आँख हैं जिनकी, तथा जिनका मनोहर ईषत्हास्य ब्रह्मा प्रभृतिक देवगण के मन को भी अतिशय मनोहारी है अर्थात् मोहित करनेवाले। और जिन भगवान् श्रीरामजी का मुखकमल भगवती श्रीसीताजी के कटाक्ष से सतत देखा जाता है। प्रणाम मात्र करने से प्रपन्न व्यक्तियों के ऊपर अनुग्रह करनेवाले। तथा जिन भगवान् का चरणकमल अच्छी तरह से विकसित है तथा मुनिगण के मनरूपी मधुलोभी भ्रमरों से चुम्बित-सदा सेवित है। तथा जो भगवान् आजानुबाहु हैं। तथा एतादृश भुजाओं में अति सामर्थ्ययुक्त अद्भुत आश्चर्य कार्यकारी दिव्य लोकोत्तर धनुष तथा बाण विद्यमान हैं। एवं जो भगवान् बहुमूल्य मनोहर कण्ठहार तथा अंगद केयूर विजोंठा, और नूपुर प्रभृतिक अनेक आभूषणों से युक्त है। एवं कमल किञ्जल्क की तरह पीत वस्त्र से सर्वदा सुशोभित हैं, और जिन भगवान् का श्रीविग्रह शरीर आषाढ़ मासिक नीलमेघ की तरह श्यामल है। श्रीतुलसीदासजी ने भी इत विलक्षण विग्रह का 'केकीकण्ठाभनीलम्' इस तरह मयूर नीलिमा से उपमित किया है। जो भगवान् हेयप्रत्यनिक अनन्तगुणकल्याण गुणों का आकर हैं। तथा कृपा का समुद्र है इसलिए मुनिलोग इनको दयासागर कहते हैं। भक्त प्रपन्न व्यक्तियों का हृदय कमल ही जिनका आसन है। अर्थात् जो भक्त के हृदय में सदा निवास करते हैं। क्योंकि 'मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि' ऐसा कथन है। यद्यपि भगवान् जो कि ज्ञानानन्द अमल स्वरूपक हैं। वह तो सर्वव्यापक होने से सर्वत्र सर्वदा विराजमान हैं। उनके लिए स्थान विशेष का कथन अयुक्तप्राय मालूम पडता है। तथापि 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति' इत्यादि शास्त्र से उपासना के लिए स्थान विशेष का कथन यत्र तत्र किया गया है वह सर्वथा युक्त ही है। और जिनका मुखकमल विल

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

क्षण शोभा से सर्वदा युक्त रहता है । तथा जो परमात्मस्वरूप हैं । और शरणागत व्यक्तियों के रक्षण करने के लिए सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं । वे एक दो व्यक्तियों का ही रक्षण करते हैं ऐसा नहीं किन्तु जगत् मात्र का सम्पूर्ण जगत् का रक्षक हैं नरोत्तम हैं । दशरथराजा के पुत्ररूप से अवतार लिया है । जो स्वयं महोत्सवरूप हैं । तथा श्रीसीताजी से सदा युक्त हैं । एतादृश श्रीरामजी का मैं सदा स्मरण करता हूँ। हे प्रियोत्तम सुरसुरानन्द ! सर्वशक्तिमान् द्विभुज श्रीरामजी का शुभेच्छु श्रीराम भक्त पुरुष सदा ध्यान करें । तुम भी उन्हीं का ध्यान करो ॥२-६॥

卐 इति श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे तृतीयपरिच्छेदः-३ 卐

Ψ अथ मुक्तिसाधननिरूपणम् चतुर्थप्रकरणम् Ψ

एवं तेऽभिहितं ध्यानं श्रृणु तन्मुक्तिसाधनम् ।
मुमुक्षूणां परं वेद्यं विधेयं चाथ सर्वदा ॥१॥

तृतीयप्रश्नस्योत्तरं प्रदाय मोक्षसाधनं किमिति चतुर्थप्रश्नमुत्तरयितुमुपक्रमते-'एवं तेऽभिहितं ध्यानमित्यादि । हे सुरसुरानन्द ! ध्यानम् एवं यथोक्त प्रकारेण तुभ्यमभिहितं कथितम् । अनन्तरम् तन्मुक्तिसाधनं त्वया पृष्टं यन्मुक्तेः कारणम् किमिति अथ तादृशं मुक्तिकारणम् कथयामि त्वं सावधानमना श्रृणु । किमाकारकम् तत् तत्राह सर्वदा सर्वतोभावेन परम् अतिशयेनोत्कृष्टम् मोक्षसाधनतयैवोत्कृष्टत्वम् तथा मुमुक्षूणां संसारसागरतितीर्षतां विधेयं विधातुं योग्यम् वेद्यं वेदितुं योग्यमेतादृशमोक्षकारणम् कथयामि तत् श्रृणु श्रुत्यावधार्यतां सम्पादयेतिभावः ॥१॥

श्रीआचार्यजी महाराज ध्यान क्या है ? इस तृतीय प्रश्न का समाधान करके, '**किं मुक्तिसाधनम्**' इत्याकारक चतुर्थ प्रश्न का उत्तर देने के लिए उपक्रम करते हैं '**एवं तेऽभिहितं ध्यान**' मित्यादि । हे सुरसुरानन्द ! पूर्वकथित प्रकार से ध्यान के स्वरूप का प्रतिपादन किया । इसके वाद जो चतुर्थ प्रश्न है उसका उत्तर सुनो। संसार सागर को पार करने की ईच्छावाले पुरुषों से जानने के योग्य उस मुक्ति साधन को सुनो तथा उसका आचरण करो ॥१॥

तप्तेन मूले भुजयोः समङ्कनं शरेणचापेन तथोर्ध्वपुण्ड्रकम् ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

श्रुतिश्रुतंनाम च मन्त्रमालिके संस्कारभेदा परमार्थहेतवः ॥२॥

मोक्षसाधनात्मकपञ्चसंस्कारस्वरूपम् दर्शयति 'तप्तेन मूले इत्यादि' हे सुर सुरानन्द श्रुतिश्रुतम् श्रुतिस्मृत्यादिषु श्रुतं प्रतिपादितं श्रुत्यादिजनितशाब्दबोधविषयीभूतम् तप्तेन वह्नौ तापितेन शरेण बाणेन चापेन भुजयोर्मूले समङ्कनं कर्तव्यम् । तदुक्तम् 'तापपुण्ड्रं तथा नाममालामन्त्रश्च पञ्चमः । अमी परमसंस्काराः परमैकान्तहेतवः' इतिप्रथमसंस्कारः । तथा श्रीरामरजस्वरूपश्वेतमृत्तिकयोर्ध्वं पुण्ड्रम् कर्त्तव्यमिति द्वितीयः संस्कारः । तथा श्रुतिविहितं नामापि कर्तव्यम् । 'यस्मिन्मासे भवेद्दीक्षातन्मूर्तिनामनोदितम् । शक्त्यावेशावताराणां वर्जयेन्नाम वैष्णवः' इत्युक्त्या भगवन्नामसम्बन्धयुक्तमेव श्रीवैष्णवनाम्ना भाव्यं तथा च रामदासादिनाम कर्तव्यं नतु गृहस्थनाम्नापरिचाययेदिति तृतीयसंस्कारः । तथा श्रुतिविहितौ मालामन्त्रौ तुलसीजामालाधार्या मन्त्रश्च गृहीतव्यः तत्र माला तुलसीकाष्ठनिर्मितैव कर्तव्या तदुक्तं-'अष्टोत्तरशतैनैव तुलसीकाष्ठसंभवा । कण्ठादिनाभिपर्यन्ता धारयेद्वैष्णवोत्तमः' इति । मन्त्रस्तु षडक्षरश्रीराममन्त्रः परिगृहीतव्यः । तदुक्तं 'मन्त्ररूपं प्रवक्ष्यामि श्रृणु नारद तत्वतः । रकारादिमकारान्तं मन्त्रं षड्वर्णसंयुतम् । इतिचतुर्थपञ्चमसंस्कारौ । एते पञ्चसंस्कारभेदाः । परमार्थस्य दुःखनिवृत्तिपूर्वकनिरतिशयानन्दरूपसायुज्यमोक्षस्य परमोपायभूतास्तस्मादेते पञ्चसंस्कारा एव मोक्षसाधनं नान्यत् किमपि मोक्षहेतुरिति विवेकः ।

तदत्रानुसन्धेयं पञ्चसंस्कारविषये-धनुर्बाणधारणस्य माहात्म्यम् शुक्लयजुर्वेदसंहिता अ.२९मं. ३९।४८

धन्वना (ङ्क्ति) गाधन्वनाजिंजयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपक्रामकृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥
सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्मसंसन् ॥४८॥

यो वै नित्यं धनुर्बाणाङ्क्तो भवति स पाप्मानन्तरति संसारन्तरति स भगवदाश्रितो भवति स भगवद्रूपो भवति ।

श्रीमद्रामायणे किष्किन्धाकाण्डे सर्गे १७

तदस्त्रं तस्य वीरस्य स्वर्गमार्गप्रभावनम् ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

रामबाणासनक्षिप्तमावहत् परमाङ्गतिम् ॥८॥

महारामायणे सर्गे २

चक्रात् फलं शतगुणं धनुषा शरेण यश्चाङ्कितोऽस्ति स च रामजनाग्रगण्यः ।
सायुज्यमेव लभते किल तत्क्षणे वै रामः प्रियः प्रियतरोऽनुदिनं च तस्य ॥१८॥
तेन प्रसन्नमनसा समुदारबुद्धया तप्तं धनुः शरमिदं भुजयोः प्रकुर्यात् ।
पूजां पुनः प्रकुरुते विवधैश्च रत्नैस्तस्मिन्क्षणे भवति जीवन एव मुक्तः ॥२१॥
वामे करे च धनुषा च शरेण सव्ये यश्चाङ्कितो हि मनुजो नरलोकधन्यः ।
तस्मै नमन्ति शिरसा द्रुहिणादिदेवास्तद्दर्शनेन मनुजाः किल कल्मषघ्नाः ॥२२॥
श्रीरामसंस्कारविवर्जिता ये निष्पुच्छशृङ्गाः पशवो नारास्ते ।
शक्ता न वेदा अभिवर्णितुं यत्तुभ्यं मयाख्यातमविस्तरेण ॥२६॥

अमररामायणे सर्गे १

मम शूलाच्छक्तिशूलाद् विष्णुचक्रात् परात्परौ ।
दीव्यन्तौ श्रीराममुष्ट्या धनुर्वाणौ नमाम्यहम् ॥

स्कन्दपुराणे काशीखण्डे अ. २१।३६

चापोसि सर्वशस्त्राणां वातो वेगवतामसि ।

स्कन्दपुराणे माहेश्वरखण्डे अ. ४।७४।

आयान्तं चक्रमालोक्य ग्रसितं तत्क्षणाच्च तत् ।
ग्रसितं चक्रमालोक्य विष्णुः परपुरञ्जयः ।
मुखं तस्य परामृज्य विष्णुनोद्गलितं पुनः ॥७४॥

पद्मपुराण पातालखण्डे अ. ५२।३० श्रीरामास्त्रप्रभावः

कपिः पाशुपतैरस्त्रैर्बद्धो लोकैरभीक्षितः ।
हाहेति च वदन्त्येते यावत्तावत्समीरजः ॥
स्मृत्वा रामं स्वमनसा त्रोटयामास तत्क्षणात् ।
समुक्तगात्रः सहसा युयुधे सुरथं नृपम् ॥३१॥
तं मुक्तगात्रं संवीक्ष्य सुरथः परमास्त्रवित् ।
महाबलं मन्यमानो ब्राह्ममस्त्रं समाददे ॥३२॥
मारुतिर्ब्राह्ममस्त्रं तु निजगाल हसन् बली ।

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

तन्निगीर्णं नृपो दृष्ट्वा रामं सस्मार भूमिपः ॥३३॥
स्मृत्वा दाशरथिं रामं रामास्त्रं स्वशरासने ।
सन्ध्याय तं जगादेदं बद्धोऽसि कपिपुङ्गव ॥३४॥

पद्मपुराणे पातालखण्डे अ. ४४।१५ शिवत्रिशूलदशा

तदाऽऽहतो भूतपतिः शूलं तीक्ष्णं समाददे ।
जाज्वल्यमानं त्रिशिखं वह्निज्वालासमप्रभम् ॥१५॥
आयान्तं तन्महद् दृष्ट्वा शूलं प्रज्वलनप्रभम् ।
हस्ते गृहीत्वा तरसा बभञ्ज तिलशः क्षणात् ॥

श्रीअगस्त्यसंहितायाम्

नाङ्कितो चापवाणाभ्यां न मन्त्रोस्ति षडक्षरः ।
न नाम रामसम्बन्धि न रामोपासको भवेत् ॥
बाहुमूले धनुर्वाणेनाङ्कितो रामकिंकरः ।
शीतलेनाथतप्तेन तस्य मुक्तिर्न संशयः ॥
शीतलाच्छतगुणं प्रोक्तं तप्तं च परिधार्यते ।
अङ्किताः सर्वकालेषु चतुवर्णाश्रमादयः ॥
चक्राच्छतगुणं प्रोक्तं फलं बाणादिधारणे ।
सर्वेषां रामभक्तानां राममुद्राभिधारणम् ॥

धनुर्बाणयोः परम्परा 'सदाशिवसंहितायाम्'

शीताङ्कितो धनुर्बाणात् प्रथमं च महाशिवः ।
सीतया ह्यङ्कितः पश्चाद्धनुमांश्च हरिप्रियः ॥
महाशंभुः शिवं प्राह स शिवो नारदं तथा ।
नारदश्चाह वाल्मीकिं वाल्मीकिश्च लवं कुशम् ॥
हनुमांस्तु अगस्त्याय अगस्त्यश्च सुतीक्ष्णकम् ।
सुतीक्ष्णेन महाभागा येऽङ्किता वहवो मुने ॥

पुनः तत्रैव-

सुरगुर्वादिगुरवो राममन्त्रस्य सेवकाः ।
श्रीगुरोर्मारुतिः शिष्यः सुग्रीवश्च कपीश्वरः ॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

श्रीरामायुधतप्तौ च राममन्त्रस्य धारणात् ।
पद्माष्टदशसंख्याताः स्वसैन्याश्च हनूमता ॥
दीक्षितास्तेन मन्त्रेण धनुर्बाणेन चाङ्किताः ।
श्रीहनुमच्छिष्यो भूतो महाराजो विभीषणः ॥
रामायुधाभ्यां तप्ताभ्यामङ्किताश्च समुद्रया ।
तथा तस्य प्रजाः सर्वाः चिह्निता रामलांछनैः ॥
राजमार्गमिमं विद्धि रामोक्तं जानकीकृतम् ।
यद्दते चान्यमार्गस्तु चौराणां वीथिका यथा ॥
पूर्वाचार्यं हनूमन्तं त्यक्त्वा ह्यन्यमुपासते ।
क्लिश्यत्येव च मुग्धस्तु मूलहा पल्लवाश्रितः ॥ इति ।

ऊर्ध्वपुण्ड्रसंस्कारविषये उत्तरपराशरस्मृतौ २ अध्याये

स्थण्डिले सैकते वापि ह्यपलिप्य ततो गुरुः ।
द्वादशैतानि पुण्ड्राणि लिखेतास्मिन् यथाक्रमः ॥
अष्टपुण्ड्रान्यष्टदिक्षु मध्ये चत्वारि विन्यसेत् ।
व्याहरन्सर्वपुण्ड्रेषु केशवादीन्यथाक्रमः ॥
आवाहनार्घ्यपाद्यश्च धूपदीपनिवेदनैः ।
पुण्ड्राणि धारयेच्छिष्यमासीनं विनयान्वितम् ॥

स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमा. अ. २।१९। तथा पद्मपुराणे उत्तरखण्डे अ. २२५।४५।

विमलां मृत्तिकां रम्यामादाय द्विजसत्तम ।
मन्त्रेणैवाऽभिमन्त्र्याऽथ ललाटादिषु वैष्णवः ॥
धारयेदूर्ध्वपुण्ड्राणि यथासंख्यमतन्द्रितः ।
ब्रह्मन्द्वादशपुण्ड्राणि ब्राह्मणः सततं वहेत् ॥
ललाट उदरे चाथ वक्षसि कण्ठकूबरे ।
कुक्ष्योर्बाह्वोः स्कन्दयोश्च पृष्ठं त्रिके च वै शिरः ॥
तिलका द्वादशप्रोक्ता ब्राह्मणस्य सदाऽनघ ! ।
ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

वक्षःस्थले माधवं च गोविन्दं कण्ठकूबरे ।
विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ तद्वाहौ मधुसूदनम् ।
त्रिविक्रमं कन्धरायां वामनं वामपार्श्वके ।
श्रीधरं वाहुके वामे हृषीकेशं तु कन्धरे ।
पृष्ठे तु पद्मनाभं च त्रिके दामोदरं न्यसेत् ।
तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवं तु मूर्धनि ।
एवं कार्यं ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्योपधारयेत् ।
श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं तथा ।
श्रीकरं पीतमित्याहुः श्वेतं मोक्षकरं शुभम् ।
एकान्तिनो महाभागाः सर्वलोकहिते रताः ।
साऽन्तरालं प्रकुर्वन्ति पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम् ।
मध्ये छिद्रेण संयुक्तमेतद्धि हरिमन्दिरम् ।
ऊर्ध्वं सौम्यमृजुं सूक्ष्मं सुपार्श्वं सुमनोहरम् ।
निरन्तरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्डं द्विजाधमः ।
सहि तत्र स्थितं लक्ष्म्या सह माञ्च व्यपोहति ।
अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु ये कुर्वन्ति द्विजाधमाः ।
तैर्ललाटे शुनः पादं निक्षिप्तं वै न संशयः ।
तस्माच्छिद्रान्वितं पुण्ड्रं महच्छिद्रं शुभान्वितम् ।
धारयेद् ब्राह्मणोनित्यं हरिसालोक्यसिद्धये ।

उपर्युक्ततिलके श्रीधारणक्रमः

श्रीदेवी प्रथमं नाम द्वितीयममृतोद्भवा ।
तृतीयं कमला प्रोक्ता चतुर्थं चन्द्रशोभिता ॥
पञ्चमं तु वरारोहा षष्ठं तु रामवल्लभा ।
सप्तमं विष्णुपत्नी स्यादष्टमं वैष्णवी तथा ॥
नवमं शार्ङ्गिणी प्रोक्ता देवदेवी दशैव च ।
एकादशं तु लक्ष्मी स्याद्द्वादशं सर्वसुन्दरी ॥
एवं ध्यात्वान्तरालेषु हरिद्रां धारयेच्छ्रियम् ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

यथा श्रियै नमः । अमृतोद्भवायै नमः इत्यादि ॥

स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमा. ३।१९।

अनामिकाशान्तिदोक्ता मध्यमाऽऽयुष्करी भवेत् ।
अंगुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तस्तर्जनी मोक्षदायिनी ॥

अभिमन्त्रणमन्त्रः

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतवाहुना ।
आरुह्य मम गात्राणि सर्वपापं प्रमोचय ॥

लौगाक्षिस्मृतौ-

अंगुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमायुष्करी भवेत् ।
अनामिकान्नदा नित्यं तर्जनी मुक्तिभुक्तिदा ॥

अभिषिक्तं तु यच्चूर्णं विष्णुविम्बे तु यो नरः ।
हरिद्रां धारयेन्नित्यं सोऽश्वमेघफलं लभेत् ॥

पद्मोत्तरखण्ड अ. २२०

आरभ्यनासिकामूलमाकेशान्तं प्रकल्पयेत् ।
नासिकात्रितयं भागं नासिकामूलमिष्यते ॥

नासामूले हृदं प्रोक्तं तन्मध्येऽब्जद्विपत्रकम् ।
तन्मध्ये च हरेः पादौ कर्णिकायां श्रीरुच्यते ॥

तिलके १७ दोषा भरद्वाजसंहिता अ. ४ तथा पद्मपुराणे उत्तरखण्डे अ. २२५

वर्तुलं तिर्यगच्छिद्रं ह्रस्वं दीर्घततं तनुम् ।
वक्रं विरूपं बद्धाग्रछिन्नमूलं पदच्युतम् ।
अशुभ्रं रूक्षमासक्तं तथाऽनंगुलिकल्पितम् ।
विगन्धमपसव्यं च पुण्ड्रमाहुरनर्थकम् ।

वाल्मीकिसंहितायाम् ४

हरेः पादाकृतिं कुर्यान्मध्यच्छिद्रसमन्वितम् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं स्वमोक्षाय दुःखनाशाय सर्वथा ॥
आचम्यैवोर्ध्यपुण्ड्रं तु शुद्धया च मृदा सदा ।
कुर्याच्चाथान्तरालेषु हरिद्राधारणं तथा ॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

पूर्वं सिंहासनं कुर्युस्ततः पार्श्वद्वयं पुनः ।
ततः पश्चाच्च तन्मध्ये लिखेयुः सुन्दरीं श्रियम् ॥

पद्मपुराणे उत्तरखण्डे अ. २२५

अश्वत्थपत्रसंकाशं वेणुपत्राकृतिस्तथा ।
पद्मकुड्मलसंकाशा मोहने श्रीस्त्रिधा स्मृता ॥
प्रदीपकलिकाकारा या रेखापुण्ड्रमध्यगा ।
तस्या रूपेण लक्ष्मीस्त्वं कलया सन्निधिं कुरु ॥
ॐ लक्ष्मीप्रेमसमुद्भूते हरिद्रे हेमसन्निभे ।
विभर्मि त्वां महाभागे वरदा भव ते नमः ॥
हरिद्रातिपरप्रेम्णा णिजर्थोऽत्र विचार्यताम् ।
प्रापणाच्च हरेः साक्षाद्धरिद्रेयं प्रकीर्तिता ॥

बृहद्ब्रह्मसंहिता पाद ३ अ. १०

पुण्ड्ररूपेण मां विद्धि रेखारूपेण वै श्रियम् ।
संधारयन्ति ये भाले बाहुवक्षस्थलादिषु ॥
हरिद्रासंभवं चूर्णं टङ्कणेन समन्वितम् ।
भावितञ्चाम्लद्रव्येण रक्तत्वमुपयाति हि ॥

बृहद्वैष्णवपद्धतौ पत्रा २८

श्रियमेकां तु यः कुर्यात् द्विरेखातिलकं विना ।
तस्य लक्ष्मीर्भवेद्रुष्टा धर्मादिश्च विनश्यति ॥
सश्रीतिलकहीनस्तु यः पूजयति केशवम् ।
निष्फलं पूजनं तस्य स सन्ध्यावन्दनादिकम् ॥
सश्रियं तिलकं कुर्यात् सायुज्यादिफलप्रदम् ।
तस्य विष्णुर्भवेत्तुष्टो मुक्तिश्चैव करे स्थिता ॥

स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डे मार्घशीर्षमा. अ. ३

अशुचिर्वाप्यनाचारो महापापं समाचरेत् ।
शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्राङ्कितो नरः ।
मत्प्रियार्थं शुभार्थं वा रक्षार्थं चतुरानन ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

मत्पूजाहोमके चैव सायं प्रातः समाहितः ।
मद्भक्तो धारयेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्रं भवापहम् ॥१५॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो म्रियते यदि कुत्रचित् ।
श्वपाकोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते ॥१६॥
यज्ञो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ॥२१॥
यच्छरीरं मनुष्याणामूर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम् ।
तन्मुखं नैव पश्यामि श्मशानसदृशं हि तत् ॥२२॥

तुलसीकाष्ठचन्दनस्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डे कार्तिकमा. अ. २३

पुष्काराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्था ।
वासुदेवादयो देवास्तिष्ठन्ति तुलसीदले ॥१४॥
विष्णोः सायुज्यमाप्नोति सत्यं सत्यं नृपोत्तम ।
तुलसीकाष्ठजं यस्तु चन्दनं धारयेन्नरः ॥१६॥

तथा पद्मपुराणे उत्तरखण्डे अ. १०५।१७

तुलसीकाष्ठजं यस्तु चन्दनं धारयेन्नरः ।
तद्देहं न स्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत् ॥

बृहद्हारीतस्मृतौ अ. २

तमसो भस्म रजसो गन्धः सत्वस्य मृत्तिका ।
तस्माद्भस्मादिभिर्नेच्छेदेकान्तशुद्धिमात्मनः ॥

बृहन्नारदीयपुराणे पूर्वखण्डे अ. १३

ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो यस्तु तुलसीमूलमृत्स्नया ।
श्रीगोपीचन्दनेनापि चित्रकूटमृदापि वा ॥

लौगाक्षिस्मृतौ तथा पद्मपुराणे उत्तरखण्डे अ. २२५

पर्वताग्रे नदीतीरे विष्णुक्षेत्रे विशेषतः ।
सिन्धुतीरेऽथ वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिते ॥
मृद एतास्तु संग्राह्या वर्ज्याश्चान्याश्च मृत्तिकाः ।
विष्णोः स्नानोदकं यत्र प्रवाहयति नित्यशः ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

पुण्ड्राणां धारणार्थाय गृह्णीयात्तत्र मृत्तिकाम् ॥
हरेः पादाकृतिं कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं विधानतः ।
मध्यच्छिद्रेण संयुक्तं तद्धि वै मन्दिरं हरेः ॥२२॥
समारभ्य भ्रुवोर्मध्यमन्तरालं प्रकल्पयेत् ।
अन्तरालं द्व्यंगुलं स्यात्पार्श्वावंगुलिमात्रकौ ॥४४॥
नित्यं नैमित्तिकं कर्म लौकिकञ्चैव वैदिकम् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्राङ्कितः कुर्यात् तत्तत्फलमवाप्नुयात् ॥
बृहद्ब्रह्मसंहितायां पादे ३ अ. १०
प्रणवावयवास्तिस्त्रस्त्रयो देवाः प्रकीर्तिताः ।
तिस्त्रो व्याहृतयस्त्रीणि छन्दांसि ज्वलनस्त्रयः ॥१३१॥
त्रीणि तत्त्वानि पुण्ड्रेषु चिन्तनीयानि सूरिभिः ।
बाधूलस्मृतौ
ऊर्ध्वगत्यां तु यस्येच्छा तस्योर्ध्वं पुण्ड्रमुच्यते ।
ऊर्ध्वगत्यां तु देवत्वं स प्राप्नोति न संशयः ॥
ब्रह्मोक्तयाज्ञवल्क्यसंहितायां अ. २।३१
वेणुपत्रदलाकारं वैष्णवं तिलकं स्मृतम् ।
अर्द्धचन्द्रे तथा शैवं शाक्तेयन्तिर्यगुच्यते ॥
३-नामसंस्कारबृद्धहारीतस्मृतौ अ. २।९१
तृतीयं नामसंस्कारं कुर्व्वीत शुभवासरे ।
स्नात्वा संपूज्य देवेशं गन्धपुष्पादिभिर्गुरुम् ॥
नामाधिदैवतं पश्चात् पूजयेत् प्रयतात्मवान् ॥९३॥
द्वादशैव तु मासास्तु केशवाद्यैरधिष्ठिताः ।
आरभ्य मार्गशीर्षं तु यदा संख्या द्विजोत्तमः ॥९४॥
यस्मिन्मासि भवेद्दीक्षा तन्मूर्त्तेर्नाम चोदितम् ।
नृसिंहरामकृष्णाख्यं दासनाम प्रकल्पयेत् ९५॥
शक्त्यावेशावताराणां वर्जयेन्नाम वैष्णवः ।
नाम दद्यात्प्रयत्नेन वैष्णवं पापनाशनम् ॥९६॥

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

यस्य हि वैष्णवं नाम नास्ति चेत्तु द्विजन्मनः ।
अनामकः सविज्ञेयः सर्वकर्मसुगर्हितः ॥९७॥
चक्रस्य धारणं यस्य जातिकर्मणि सम्भवेत् ।
तत्र वै मासनामापि दद्याद्विप्रो विधानतः ॥
ध्यात्वा समर्च्चयेन्नाममूर्त्तिमन्त्रेण देशिकः ॥९८॥
धूपं दीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलञ्च समर्पयेत् ।
प्रदक्षिणमनुब्रज्य भक्त्या सम्यक् प्रणम्य च ॥
तन्मन्त्रं मूलमन्त्रं वा जपेत् सहस्त्रसङ्ख्यया ।
पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत शतमष्टोत्तरं हविः ॥१००॥
वैष्णवैरनुवाकैश्च जुहुयात् सर्पिषा तदा ।
नाम दद्यात् ततः शिष्यं मन्त्रतोये समाप्लुतम् ॥
ततः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा होमशेषं समापयेत् ।
वैष्णवान् भोजयेत् पश्चाद्दक्षिणाद्यैश्च तोषयेत् ॥१०२॥

एवं हि नामसंस्कारं कुर्वीत द्विजसत्तमः ।

कृष्णयजुर्वेदमैत्रायणीयशाखाया मानवगृह्यसूत्रे १ पुरुषे १८ खण्डे

यशस्यं नक्षत्राश्रयं नामधेयं देवताश्रयम् ॥

ऋग्वेदे ७ मण्डले ५ अनुवाके ८६ सूक्ते ७ मन्त्रः

अरं दासो न मीढुषे पराण्याहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ॥

अथर्वणोपनिषदि ब्रह्मसूक्ते अ. ६

ब्रह्मदाशा ब्रह्मदासा ब्रह्म मे कितवाः ॥

बृद्धहारीतस्मृतौ ३।१११ अध्याये

यस्मिन् शरीरे जीवानां न दास्यं परमात्मनः ।
तदेव निरयं प्रोक्तं सर्वदुःखफलं भवेत् ।
दास्यमेवं फलं विष्णोर्दास्यमेव परं सुखम् ॥
दास्यमेव हरेर्मोक्षं दास्यमेव परं तपः ।
ब्रह्माद्याः सकला देवा वशिष्ठाद्या महर्षयः ।
काङ्क्षन्तः परमं दास्यं विष्णोरेव यजन्ति तम् ॥११२॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

तस्माच्चतुर्थ्या मन्त्रस्य प्रधानं दास्यमुच्यते ।
न दास्यवृत्तिर्जीवानां नाशहेतुः परस्य हि ॥११३॥
इत्थं सञ्चिन्त्य मन्त्रार्थं जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः ।

तत्रैव अ. १

हरेर्दास्यैकपरमां भक्तिं यो लब्धमानवः ।
मुक्त इहैव राजर्षे सर्वकर्मनिबन्धनैः ॥
विष्णोर्दास्यं पराभक्तिरेषां तु न भवेत्क्वचित् ।
तेषामेव हि संसृष्टं निरयं ब्रह्मणा नृप ॥
दास्यमेव परोधर्मो दास्यमेव परं हितम् ।
दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथा निरयं व्रजेत् ॥

पद्मपुराणे उत्तरखण्डे

ब्रह्माणं रुद्रमिन्द्रञ्च यमं वरुणमेव च ।
नारायणस्य दासास्ते ये चान्येऽण्डस्य मध्यगाः ॥
यः परः पुरुषो विष्णुर्नारायण उदाहृतः ।
दासभूतमिदं तस्य ब्रह्माद्यं सकलं जगत् ॥
न प्राप्यं वैष्णवं लोकं विना दास्येन कुत्रचित् ।
तस्माद्दास्यं हरेर्भक्तो भजेतानन्यमानसः ॥

आगमचूडामणौ पटले ३२

जन्मप्रभृतिदासोऽस्मि शिष्योऽस्मि तनयोऽस्मि ते ।
त्वञ्च स्वामी गुरुर्माता पिता च मम माधव ॥
भवद्भृत्यस्य भृत्यस्य भृत्यो भवामि राघव ।
रामभद्र महाबाहो देहि जन्मनि जन्मनि ॥

भरद्वाजसंहितापरिशिष्टे अ. २

आब्रह्मलोकाल्लोकानां यदैश्वर्यं न तद् ध्रुवम् ।
अथ नित्यं महत् साधु यद्दास्यं परमात्मनः ॥

बृद्धहारीतस्मृतौ

दास्यं स्वरूपं सर्वेषामात्मनां सततं हरेः ।

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

भगवच्छेषमात्मानमन्यथा यः प्रपद्यते ॥

स चैव हि महापापो चाण्डालः स्यान्न संशयः ।

श्रीमद्रामायणे सुन्दरकाण्डे सर्गे ४३

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।

हनुमाञ्छत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥

४-तुलसीमालासंस्कार 'अभियुक्तसारावल्याम्'

ततस्तापादिकृत्वा हि पश्चान्मालां प्रदापयेत् ।

मन्त्रादिकृत्यसंयुक्तां तुलसीकाष्ठसंभवाम् ॥

सुष्कतुलस्युत्पाटनमन्त्रः

ॐ नमस्ते तुलसी देवि विष्णुधर्मसुवादिनी ।

मालार्थे चोत्पाटयामि प्रसीद भगवत्प्रिये ।

हरिभक्तिविलासे गरुडपुराणवचनम्

क्षालितां पञ्चगव्येन मूलमन्त्रेण मन्त्रिताम् ।

गायत्र्या चाष्टकृत्वो वै मन्त्रितां धूपयेच्चताम् ॥

विधिवत्परया भक्त्या सद्योजातेन पूजयेत् ।

सन्निवेद्यैव हरये तुलसीकाष्ठसंभवाम् ।

मालां पश्चात् स्वयं धत्ते स वै भागवतोत्तमः ।

मालाप्रमाणं पद्मपुराणे पातालखण्डे अ. ७९ तथा ब्रह्मखण्डे अ. २२।११

धात्रीफलकृता माला तुलसीकाष्ठसम्भवा ।

दृश्यते यस्य देहे तु स वै भागवतो नरः ॥

तुलसीकाष्ठसंभूतैर्धातृफलसमाकृतैः ।

निर्मितां मालिकां कण्ठे निधायार्चनमारभेत् ॥

अभियुक्तसारावल्यामुपदेशः ४

तुलसीकाष्ठसंभूतां धान्याकारविनिर्मिताम् ।

सम्यग् द्विधाकृता माला कण्ठलग्नैव धारयेत् ॥

स्मृतिरत्नाकरे

शान्तये पुष्टये मुक्त्यै तुलसीकाष्ठजो मणिः ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

सर्वसिद्धिप्रदः पाद्मो मणिर्धार्यः श्रियै बुधैः ॥

अभियुक्तसारावल्यां जपमालोपदेशः ४

धात्रीवदरगर्भवत्प्रमाणं मणिं कारयेत् ।

ऊर्ध्ववक्रमणेर्वाख्यं कर्तव्यं तन्न लङ्घयेत् ॥

अष्टोत्तरशतं पूर्वं तदर्द्धं पादमेव वा ।

कुर्यात्तत्रविधानोक्तं सहस्रं वा यथेच्छया ॥

नवत्रितन्तुनाचैतद् ग्रथनीयमसंस्पृशेत् ।

एकैकमणिमध्ये तु विष्णुग्रन्थी प्रकल्पयेत् ॥

भरद्वाजस्मृतौ अ. ७।४३ पद्मपुराणे सृष्टिखण्डे अ. ६१।१२५

ग्रन्थिं पृथक् पृथक्कुर्यान्मणीनामन्तरे बुधः ।

ऊर्ध्वाभ्यां प्रोत्यसीमार्धं ग्रन्थि दद्याद्यथाशुभम् ॥४३॥

स्वयं च ग्रन्थिता या च श्लथान्योन्यप्रसञ्जिता ।

शूद्रादिग्रथिताऽशुद्धा दूरात्तां परिवर्जयेत् ॥१२५॥

मालानिर्माणविधिः-'गौतमीयतन्त्रे अ. १५

कार्पाससम्भवं सूत्रं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।

त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य ग्रन्थयेच्छिल्पशास्त्रतः ॥

मुखे मुखं तु संयोज्य पुच्छे पुच्छं नियोजयेत् ।

गोपुच्छसदृशी माला यद्वा सर्पाकृतिः शुभा ॥

छिन्ने सूत्रे भवेन्मृत्युस्तस्माद्यत्नपरो भवेत् ।

जपान्ते कर्णदेशे वा उच्चस्थानेऽथवा न्यसेत् ॥

कम्पनात्सिद्धिहानिः स्याद्धननं बहुदुःखकृत् ।

शब्दतश्च भवेद्रोगः करभ्रष्टा विनाशकृत् ॥

अप्रतिष्ठितमालाभिर्मन्त्रं जपति यो नरः ।

सर्वं तद्विफलं विद्यात् क्रुद्धा भवति देवता ॥

यत्संख्यया समारब्धं तज्जप्तव्यं दिने दिने ।

यदि न्यूनाधिकं कुर्यात् व्रतभ्रष्टो भवेन्नरः ॥

मेरुहीना च या माला मेरुलङ्घा च या भवेत् ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

अशुद्धप्रतिकाशा च सा माला निष्फला भवेत् ॥
अष्टोत्तरशतं कुर्य्याच्चतुःपञ्चाशकं तथा ।
सप्तविंशतिकाः कार्यास्ततो नैवाधिका हि ताः ॥

श्रीतुलस्या ध्यानं-श्रीतुलस्यै नमः ।

ध्यायेच्च तुलसीं देवीं श्यामां कमललोचनाम् ।
प्रसन्नां पद्मवदनां वरदाञ्च चतुर्भुजाम् ॥
किरीटहारकेयूरकुण्डलादिविभूषणाम् ।
वरदमुद्रासंयुक्तां पद्मासननिषेविताम् ॥
प्रियां च सर्वदा विष्णोः सर्वदेवनमस्कृताम् ।

आवाहनं-श्रीसूक्तेन-पौराणिकमन्त्रेण च

स्कन्दपुराणे ब्रह्मखण्डे चातुर्मास्यमा. अ. १४।३६

यथा श्रीस्तुलसीवृक्षे तथा बिल्वे च पार्वती ॥ इति ।

ऋग्वेद परिशिष्टानि खिलसूक्तानि

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्त्रजाम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मऽआवह ॥१॥
देवि त्रैलोक्यजननि सर्वलोकैकपावनि ।
आगच्छ वरदे मातः प्रसीद तुलसी प्रिये ॥
आगच्छ तुलसी देवि महालक्ष्मी परात्परे ।
चतुर्वर्गास्त्वयि न्यस्ता मालायां निहिता भव ॥ इत्यावाहनम् ।
ॐ तां मऽआवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥२॥
सर्वदेवमये देवि सर्वदा विष्णुवल्लभे ।
देवि स्वर्णमयं दिव्यं गृहाणासनमव्यये ॥ इत्यासनम् ।
ॐ अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मादेवीर्जुषताम् ॥३॥
सर्वदेवा यथास्वर्गे तथात्वं भुवि सर्वदा ।
दत्तं पाद्यं गृहाणेदं तुलसी त्वं प्रसीदमे ॥ इतिपाद्यम् ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

ॐ कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥४॥
गन्धपुष्पसमायुक्तं सर्वेषां प्रीतिदायकम् ।
अर्घ्यं गृहाण त्वं देवि दैत्यान्तकरणप्रिये ॥ इत्यर्घ्यम् ।
ॐ चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्ती श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मिनीमीं शरणमहं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ॥५॥
कर्पूरवासितं तोयं सुवर्णकलशे स्थितम् ।
दत्तमाचमनीयं च गृहाण हरिवल्लभे ॥ इत्याचमनीयम् ।
ॐ आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरायाश्च बाह्याऽअलक्ष्मीः ॥६॥
गंगासरस्वतीरेवापयोष्णीनर्मदाजलैः ।
स्नापितासि मया देवि तथा शान्तिं कुरुष्व मे ॥ इतिस्नानीयम् ।
ॐ उपैतु मां देवसखः कीर्त्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्त्तिमृद्धिं ददातु मे ॥७॥
पञ्चामृतं मयानीतं पयो दधि घृतं मधु ।
सह शर्करया देवि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ इतिपञ्चामृतम् ।
क्षीरोदमथनोद्भूते चन्द्रलक्ष्मीसहोदरे ।
तुलस्यमृतरूपे त्वां स्नापयामि प्रसीद मे ॥ इति शुद्धस्नानम् ।
ॐ क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिञ्च सर्वान्निर्णुद मे गृहात् ॥८॥
सूक्ष्मतन्तुभवं वस्त्रं निर्मितं विश्वकर्मणा ।
लोकलज्जाहरं देवि गृह्यतां सुरसत्तमे ॥
मुक्तारत्नसुवर्णैश्च रचितंचारुमासुरम् ।
कञ्चुकं नीलवर्णं च गृहाण परमेश्वरि ॥ इतिवस्त्रम् ।
ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करिषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥९॥
केशरागुरुसंयुक्तं चन्दनादिसमन्वितम् ।

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

कस्तूरिकासमायुक्तं कुंकुमं प्रतिगृह्यताम् ॥ इतिगन्धम् ।
हरिद्रां कुंकुमं चैव सिन्दूरं कज्जलाविन्तम् ।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ? ॥ इतिसौभाग्यद्रव्यम् ।
रक्तवर्णं सुशोभाढ्यं नानागन्धैस्तु संस्कृतम् ।
वासन्तिकं मोदकं च गुलालं प्रतिगृह्यताम् ॥ इतिगुलालम् ।
माङ्गल्यतन्तुमणिभिर्मुक्ताफलविराजितम् ।
कण्ठस्य भूषणार्थाय प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ इतिकण्ठसूत्रम् ।
काञ्चनैर्निर्मितं दिव्यं कङ्कणं च सुरेश्वरि ।
हस्तालङ्करणार्थाय कङ्कणं प्रतिगृह्यताम् ॥ इतिकङ्कणम् ।
नानाभरणशोभाढ्यं नानारत्नोपशोभितम् ।
अर्पितञ्च मया देवि तालपत्रं प्रगृह्यताम् ॥ इतिताटङ्कम् ।
रत्नसारैः संग्रथितं पुष्पचन्दनसंयुतम् ।
नानाभूषणभूषाढ्यं सुतल्पं प्रतिगृह्यताम् ॥
यद्यद्द्रव्यमपूर्वं च पृथिव्यामपि दुर्लभम् ।
देवभूषाढ्यभोग्यं च तद् द्रव्यं देवि गृह्यताम् ॥ इत्याभूषणम् ।
ॐ मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥१०॥
अक्षतांश्च महादेवि तुलसि सौख्यदायिके ।
अर्पयामि सदा भक्त्या सुखसंततिलब्धये ॥ इत्यक्षताम् ।
ॐ कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥११॥
माल्यदीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि सत्तम ।
मयाहृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ॥
नानाकुसुमनिर्माणं बहुशोभाप्रदं परम् ।
सुरलोकप्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम् ॥ पुष्पं पुष्पमाला च
ॐ आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
निचदेवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥१२॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

वृक्षनिर्यातरूपं च गन्धद्रव्यादिसंयुतम् ।
कृष्णाकान्ते पवित्रो वै धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ इतिधूपः ।
ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो ममावह ॥१३॥
वैश्वानरप्रज्वलितं घृतकर्पूरनिर्मितम्
दीपं भक्त्या गृहाणेमं त्रैलोक्यध्वान्तनाशिके ॥ इतिदीपः ।
ॐ आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो मऽआवह ॥१४॥
अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
नैवेद्यार्थेऽर्पयामि त्वां तुलसी माधवप्रिये ॥ इतिनैवेद्यम् ।
सुवासितं शीतलं च पिपासानाशकारणम् ।
जगज्जीवनरूपं च जीवनं देवि गृह्यताम् ॥ इतिजलम् ।
ॐ तां मऽआवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम् ॥१५॥
पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
कर्पूरैलासमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ इतिताम्बूलम् ।
ॐ यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
श्रियः पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥१६ इति ।
सुवर्णं सर्वधातूनां श्रेष्ठं देवि च तत्सदा ।
भक्त्या ददामि वरदे स्वर्णपुष्टिं च देहि मे ॥ इतिदक्षिणा ।
शीतवायुप्रदं चैव दाहे च सुखदं परम् ।
कमले गृह्यतां चेदं क्षत्रव्यजनचामरम् ॥ इतिक्षत्रचामरे ।
नीराजनं सुमाङ्गल्यं कर्पूरेण समन्वितम् ।
चन्द्रार्कवह्निसदृशं गृहाण देवि ते नमः ॥ इतिनीराजनम् ।
विष्णुप्रियकरे देवि तुलसि सुखदायिके ।
पुष्पाञ्जलिं प्रयच्छामि गृहाणायुष्यवर्द्धिके ॥ इतिपुष्पाञ्जलिः ।
देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्च्चितासि मुनीश्वरैः ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

अतो मां सर्वदा देवि ! कृपादृष्ट्या विलोकय ॥ इतिप्रार्थना ।

मनः प्रसादजननीं सुखसौभाग्यवर्द्धनीम् ।
आधिव्याधिंहरीं नित्यं तुलसि त्वां नमाम्यहम् ॥ इतिनमस्कार ।

तुलसीमाला अभिमन्त्रितकरणे मन्त्रः श्रीतुलसीगायत्री

ॐ तुलसीदेव्यै विद्महे विष्णुप्रियायै धीमहि । तन्नो वृन्दा प्रचोदयात् ॥

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणे अ. २२।१०

लक्ष्मीर्मायाकामवाणीवीजपूर्वं दशाक्षरम् ।
श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा ॥

श्रीरामार्पणकरणे मन्त्रः

ॐ तुलसी मोहनीरूपा विष्णुनाराधिता पुरा ।
अतस्ते हि प्रिया नित्या त्वय्यर्पयामि राघव ॥

श्रीरामस्यानर्पणे पापः 'गरुडपुराणे'

हरये नार्पयेद्यस्तु तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ।
मालां धत्ते स्वयं मूढः स याति नरकं ध्रुवम् ॥

स्वकृतनिषिद्धत्रयम्-पुलस्त्यसंहितायाम्

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्तघृष्टचन्दनम् ।
स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥

शिष्याय कण्ठीं दद्यात् 'हरिभक्तिविलासे'

ॐ तुलसी त्वद्धृतेनैव विष्णुस्त्रैलोक्यपूजितः ।
अतस्ते काष्ठजां मालां ददामि शिष्यहेतवे ।

स्वयं धारणे मन्त्रः

ॐ तुलसीकाष्ठसंभूते माले विष्णुजनप्रिये ।
विभर्मि त्वामहं कण्ठे कुरु मां रामवल्लभम् ॥

दूषिता माला-अभियुक्तसारावली-पुलस्त्यसंहितायाम्

न धारयेदन्यधृतां तुलसीकाष्ठसंभवाम् ।
मालां गृह्णन्नवाप्नोति पातकानि सहस्त्रधा ॥
.....सोपिगोब्रह्महा भवेत् ।

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

परकण्ठगतां मालां यो विभर्ति द्विजाधमः ।
तस्य पापं स गृह्णाति जन्मकोटिशतोद्भवम् ॥
तुलसीमाहात्म्यम्
यज्ञसूत्रं विना विप्रा वेदहीनाः क्रिया यथा ।
सत्यहीनं यथावाक्यं मालाहीना न वैष्णवाः ॥
यज्ञोपवीतवद्धार्या तुलसीमालिका सदा ।
न दोषो धारणे तस्या यतः सा ब्रह्मरूपिणी ॥
तुलसीमालिकाधारी पुनाति भुवनत्रयम् ।
प्रणमन्ति सुरास्तस्मै शिवशक्रयमादयः ॥
पञ्चरात्रे श्रीवाल्मीकिसंहिताया अ. ६
यस्य कण्ठे न लग्ना वै वैष्णवस्य च दुर्मतेः ।
तुलसी राजते सोऽथ नाममात्रेण वैष्णवः ॥
तेनस्पृष्टमबन्नादि न ग्राह्यं वैष्णवैः क्वचित् ।
दूरं चाण्डालवत् त्याज्यो द्विजकर्मबहिष्कृतः ॥
स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमा. अ.४
तुलसीकाष्ठसम्भूतां यो मालां बहते द्विजः ।
अप्यशौचोऽप्यनाचारो मामेवैति न संशयः ॥
धात्रीफलकृता माला तुलसीकाष्ठसंभवा ।
दृश्यते यस्य देहे तु स वै भागवतो नरः ॥
तुलसीदलजां मालां धातृफलकृतामपि ।
ददाति पापिनां मुक्तिं किम्पुनर्मम सेविनाम् ॥
निवेद्य भक्त्या मां मालां तुलसीकाष्ठसम्भवाम् ।
बहते यो नरो भक्त्या तस्य वै नास्ति पातकम् ॥
सदाप्रीतमनास्तस्य अहं प्रणिवरो हि सः ।
तुलसीकाष्ठसम्भूतां यो मालां बहते नरः ॥
प्रायश्चित्तं न तस्याऽस्ति नाऽशौचं तस्य विग्रहे ।
धारयन्ति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः ।

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

नरकान्न निवर्तन्ते दग्धा कोपाग्निना मम ॥१५॥

तुलसीकाष्ठसम्भूतं शिरसः कण्ठभूषणम् ।
बाहौ करे च मर्त्यस्य देहे यस्य स मे प्रियः ॥

तुलसीकाष्ठमालां तु प्रेतराजस्य दूतकाः ।
दृष्ट्वा नश्यन्ति दूरेण वातोद्धूतं यथा दलम् ॥

तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितः पुण्यमाचरेत् ।
पितृणां देवतानाञ्च पुण्यं कोटिगुणम्भवेत् ॥

सनत्कुमारसंहितायामध्याये ७

तुलसीकाष्ठसंभूता कण्ठलग्ना सुसंस्कृता ।
गुरुप्रदा तु या माला न त्याज्या सा कदाचन ॥

दुराचारी प्रमादेन यदि मालां परित्यजेत् ।
विष्णुधर्माद्बहिर्भूत्वा गुरुद्रोही भवेत्पशुः ॥

स्कन्दपुराणे ब्रह्मखण्डे चातुर्मास्यमा. अ. १७।९

यत्कण्ठे तुलसी नास्ति ते नरा पापबुद्धयः ।
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं पीयूषं रुधिरं भवेत् ॥

ततः सर्वेषु कोलेषु न त्याज्या कण्ठमालिका ।
क्षणार्धं तद्विहीनोपि विष्णुद्रोही भवेन्नरः ॥

स्कन्धस्था तुलसी यस्य स पापैर्न च लिप्यते ।
कण्ठगा तुलसी यस्य जीवन्मुक्तः सदा हि सः ॥

५-अथमन्त्रसंस्कारः अभियुक्तसारावल्यामुपदेशः

चतुःसंस्कारसम्पन्नं शिष्यं कृत्वा स्वसन्निधौ ।
ततश्च मन्त्रसंस्कारं कारयेच्च यथाविधि ॥

षडक्षरो महामन्त्रो भूताक्ष्यक्षरकस्तथा ।
आदिकाव्योद्धृता रामचरममन्त्र इत्यपि ॥

मोक्षैकसाधनोद्धूतं मन्त्रत्रयमिदंवरम् ।
स्वीयपरम्परारीत्या मन्त्रमध्यापयेद् गुरुः ॥

सुव्यापकं मन्त्रराजं द्वयं भागद्वयात्मकम् ।

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

रामचरमश्लोकञ्च यो जानाति स वैष्णवः ॥

श्रीवैष्णवमताब्जभास्करे प्रश्ने २

मन्त्राणां व्यापकानां भगवत इह चाव्यापकानान्तु मध्येऽ
तिश्रेष्ठोव्यापकः स श्रुतिमुनिसुमतः शिष्टमुख्यैर्गृहीतः ।
नित्यानामाश्रयोऽयं परित उरुशुभो राममन्त्रः प्रधानः
प्राप्योऽथ प्रापकश्च प्रचुरतरगुणज्ञानशक्त्यादिकानाम् ॥

भरद्वाजसंहिताया: परिशिष्ट अ. २

ततश्च व्यापकान्मन्त्रानन्यांश्चाङ्गैः समन्वितान् ।
दत्वास्मै पुनरेवैवं गृहीत्वा वृत्तिमादिशेत् ॥
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधपल्लवाः ।
पञ्चपल्लवमित्युक्तं सर्वकर्मसु शोभनम् ॥
कनकं कुलिशं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम् ।
एतानि पञ्चरत्नानि रत्नशास्त्रविदो विदुः ॥
अभावे सर्वरत्नानां हेम सर्वेषु योजयेत् ।

मन्त्र ऋग् ७।१००।२

ॐ त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
पर्चो यथा नः सुवितस्यभूरे रश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥

उक्तकार्यानन्तरमाचार्य उवाच

रामभद्रदयासिन्धो वात्सल्यगुणसागर ।
एनं रक्ष जगन्नाथ बहुजन्मापराधिनम् ॥

शिष्य उवाच

गुरो त्वमेव देवो मे त्वमेव परमा गतिः ।
त्वमेव परमो धर्मस्त्वमेव परमं तपः ॥

भो गुरो देहि मन्त्रं मे

तत आचार्य शिष्यमस्तके दक्षिणहस्तं विन्यस्य

दक्षिणकर्णे महामन्त्रराजं श्रावयेद्वारत्रयम्
महावस्त्रप्रावरणं कृत्वा कर्णेजपेन्मनुम् ।

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

घण्टादिवाद्यसम्भारान्वादयेत्सततं तदा ॥

आगमचूडामणौ पटले २९

तत्प्राङ्मुखोपविष्टस्य चोत्तराभिमुखो गुरुः ।
शनैः शनैः शुभे कर्णे त्रिवारं श्रावयेन्मनुम् ॥
दक्षकर्णे वदेन्मन्त्रं त्रिवारं पूर्णमानसः ।
मन्त्रार्थं मन्त्रबीजं वै तच्छक्तिं तत्फलादिकम् ॥

पद्मपुराणे उत्तरखण्डे २२३।६६ भगवद्वाक्यम्

मन्त्रार्थश्च प्रवक्तव्यो वृत्तिश्चैव विशेषतः ।
लब्धमन्त्रस्तदाचार्यं पूजयेद्भूषणादिभिः ॥
अनेन विधिना मन्त्रं योऽधीते वैष्णवाद् गुरोः ।
ततः वैष्णवतां याति नान्यथा सुरसत्तम ॥

बृहन्नारदीये-

मन्त्रदाता न च गुरुर्न च मन्त्रार्थवाचकः ।
मन्त्रमन्त्रार्थतत्वज्ञो गुरुरित्यभिधीयते ॥

मनुस्मृति ७।४७

मृगयाऽक्षो दिवास्वापः परिवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशका गणः ॥

नारदपरिव्राजकोपनिषदि-

नटादिप्रेक्षणं द्यूतं प्रमदा सुहृदं तथा ।
भक्ष्यं भोज्यमुदक्यां च षण्न पश्येत्कदाचन ॥
रागं द्वेषं मदं मायां मोहं द्रोहं परात्मसु ।
षडैतानि यतिर्नित्यं मनसापि न चिन्तयेत् ॥

यमनियमौ श्रीमद्भगवते ११।१९।३३

अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्रीरसञ्चयः ।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाऽभयम् ॥
शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम् ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥३४॥
एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादशस्मृताः ।
पुंसामुपासितास्तात ! यथाकामं दुहन्ति हि ॥३५॥

मनुस्मृतौ अ. ४।२०४

यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥

पद्मपुराणे पातालखण्डे अ. ४८।२५

ये दम्भमाश्रयन्ते वै धूर्त्ता लोकस्य वञ्चने ।
वैशसे नरके मूढाः पतन्ति यमताडिताः ॥

साधोर्लक्षणम्

साधूनां हृदयं धर्मो वाचो देवाः सनातनाः ।
कर्मक्षयाणि कर्माणि यतः साधुर्हरिः स्वयम् ॥
मन्ये न भौतिको देहो वैष्णवस्य जगत्त्रये ।
यथाऽवतारे कृष्णस्य सतो दुष्टविनिग्रहे ॥
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यद् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ॥
त्वच्चरणाचला भक्तिं त्वज्जनानां च संगमम् ।
देहि राम कृपासिन्धो मह्यं जन्मनि जन्मनि ॥
एवं प्रपद्य लक्ष्मीं तां प्रपद्येत जनार्दनम् ॥११९॥

श्रीरामचरणेऽर्पणं कुर्यात् । अगस्त्यसंहिता अ. ३३।

रामचन्द्र महीपाल शरणागतवत्सल ।
त्राह्येनं सर्वलोकेश तापत्रयमहानलात् ॥

आगमचूडामणौ पटले ७७

त्वदीयपादसम्पन्नप्रपन्नस्य सदा स्थितिः ।
इति विज्ञाय भवतः शरणागतश्चार्पितः ॥
त्वं ह्यवितासि शिष्यस्य जन्मजन्मान्तरेष्वपि ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

पाहि राघव सर्वेश तवैव शरणागतम् ॥

शिष्यः श्रीगुरुदेवं साष्टाङ्गदण्डवत् प्रणमेत्

स्वामिन् तवोपदेशाद्धि श्रीरामस्य कृपावशात् ।
गर्भवासकृतं दुःखं मया दूरीकृतं गुरो ॥
कृपया ते कृतार्थोऽहं दयया वैष्णवोऽभवम् ।
अलब्धलाभवानद्य योनियन्त्रेण पारगः ॥
एवमुत्वा पतेत् पादौ श्रीगुरोर्दण्डवद्भुवि ।

श्रीगुरुदेवः शिष्यायाशीर्वादं दद्यात्

उतिष्ठ वत्स सौम्येति सम्यगाचारवान्भव ।
सौहृद्यं मयि सर्वेषु त्वं हि जन्तुषु भावय ॥

शिष्यः श्रीगुरुदेवं पूजयेत् दक्षिणां च समर्पयेत् यजु. अ. १९।३०

ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥
गुरवे दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यं विवर्जितम् ।
वासांसि रजतं हेमरत्नानि विविधान्यपि ॥
धनं धान्यं गजं गावमश्वाश्च वृषभं पुनः ।
भक्तिपूर्वं यथाशक्तिः सर्वं गुरुं निवेदयेत् ॥
इत्येवं मन्त्रसंस्कारं कृत्वा होमं समापयेत् ।
वैष्णवेभ्यो दक्षिणाञ्च दद्यान्मङ्गलहेतवे ॥

पुनः आशीर्वादः यजु. अ. ३४।५०

ॐ आयुष्यं वर्चस्यज्जैत्रारायस्पोषभौद्भिदम् ।
इदँ हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्राया विशतादुमाम् ॥

प्रदक्षिणा दण्डवत् प्रणामञ्च कृत्वा प्रार्थयेत्

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् ।
यद्भुतं तु मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः । श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु ॥

श्रीमद्भागवते ११।२५

मदर्पणं निष्फलं वा सात्विकं निजकर्म तत् ।
राजसं फलसंकल्पं हिंसाप्रयादि तामसम् ॥

विष्ण्वर्पितानि कर्माणि सफलानि भवन्ति हि ।
अनर्पितानि कर्माणि भस्मनीव हुतं हविः ।

पद्मपुराणक्रियायोगसारखण्डे अ. २६।४७

यत्किञ्चित्कुरुते कर्म मर्त्यो धर्मः कलौ युगे ।
तदर्पयेन्महाविष्णौ भक्तिभावसमन्वितः ॥

विष्णौ समर्पितं कर्म सर्वमेवाऽक्षयं भवेत् ।

श्रीराममन्त्रं गृहित्वान्यमन्त्रग्रहणनिषेधः 'भुसुण्डिरामायणे'

राममन्त्रं गुरोर्लब्ध्वा गृह्णन्त्यन्यं तु ये पुनः ।
नरकान्न निवर्तन्ते यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

राममन्त्रं समादाय योन्यमन्त्रं समिच्छति ।
गृहीत्वा प्राप्नुयात्पापं दाता च नरकं व्रजेत् ॥

अवैष्णवोपदिष्टं चेत् पूर्वमन्त्रं परित्यजेत् ।
पुनश्च विधिना सम्यग् गृह्णीयाद् वैष्णवाद् गुरोः ॥

पतिव्रता अपि श्रीराममन्त्रं गृह्णीयात् अगस्त्यसंहितायामध्याये ८

स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः ।
लोकाश्चाण्डालपर्यन्ताः सर्वेप्यत्राधिकारिणः ॥

श्रीपार्वतीदेवी श्रीबामदेवर्षेः शिष्यास्ते 'पद्मपुराणे उत्तरखण्डे अ. २५४ श्रीशिव पार्वती प्रसङ्गे ।

श्रीवशिष्ठ उवाच

एवमुक्ता तदा देवी वामदेवान्तिकं नृप ! ।
जगाम सहसा हृष्टा विष्णुपूजनलालसा ॥८॥

समेत्य तं गुरुं देवी पूजयित्वा प्रणम्य च !
विनीता प्राञ्जलिर्भूत्वा उवाच मुनिसत्तमम् ॥९॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

श्रीपार्वत्युवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन सम्यगाराधनं हरेः ।
करिष्यामि द्विजश्रेष्ठः ! त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥१०॥

श्रीवशिष्ठ उवाच

इत्युक्तस्तु तया देव्या वामदेवो महामुनिः ।
तस्यै मन्त्रवरं श्रेष्ठं ददौ स विधिना गुरुः ॥११॥

तत्पश्चात्

नाम्नां सहस्त्रं विष्णोश्च प्रोक्तवान् मुनिसत्तमः ।
निवेदयित्वा पूजाया विधानमपि देशिकः ।
उवाच परमप्रीत्या पार्वतीं संशितव्रताम् ॥१२॥

श्रीवामदेव उवाच

अर्चयित्वा हृषीकेशं प्रातर्नित्यं जपं कुरु ।

तत्पश्चात्

सहस्त्रनाम पठनं कुरुष्व तदनन्तरम् ॥१३॥

श्रीवशिष्ठ उवाच

इत्युक्ता तेन गुरुणा प्रहृष्टेनाऽन्तरात्मना ।
पूजयित्वा नमस्कृत्य पुनरागात् स्वमालयम् ॥१४॥
शिक्षिता गुरुणा तेन वामदेवेन पार्वती ।
तथा समर्चयामास नित्यं भक्त्या सनातनम् ॥१५॥
पूर्त्तपुण्येषु सर्वत्र ग्रन्थिबन्धनपूर्वकम् ।
दम्पत्योरेकगुरुता शास्त्रे लोके च दृश्यते ॥
तीर्थस्नाने तथा कन्यादानादौ तु सुरालये ।
प्रतिष्ठायां मखेऽन्यत्र तयोरेको गुरुर्भवेत् ॥
मन्त्रे ज्ञानं धर्मकार्ये उपदेशे महात्मनाम् ।
दम्पत्योरेकगुरुता श्रेष्ठा नैव विदूषिता ॥

स्कन्दपुराणे उत्तरखण्डे गुरुगीतायाम्

एक एव गुरुः कुर्यात् सस्त्रीकस्तु गृहाश्रमी ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

मोक्षयज्ञादिकृत्येषु नान्यथा लभ्यते फलम् ॥
सर्वशान्तिकरन्नित्यं तथा बन्ध्यासुपुत्रदम् ।
अवैधव्यकरं स्त्रीणां सौभाग्यस्य विवर्द्धनम् ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ।
निष्कामा वापि विधवा दीक्षया मोक्षमाप्नुयात् ।
अवैधव्यं सकामा तु लभतेचान्यजन्मनि ॥
तथा गीता अ. ९।३२
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति पराङ्गतिम् ।
पद्मपुराणे पातालखण्डे अ. ८४।५० तः ५५ पर्यन्तम्
स्त्रीणामप्यधिकारोस्ति विष्णुराराधनादिषु ।
पतिप्रियरतानाञ्च श्रुतिरेषासनातनी ॥
वैष्णवलक्षणानि पद्मपुराणक्रियायोगसारखण्डे अ. २।७९
वैष्णवानां शरीरेषु सततं निवसाम्यहम् ।
लभन्ते नापदस्तस्मात् कदाचिद्वैष्णवा नराः ॥

ब्रह्मोवाच
अहो ध्यानैरपि ध्यातुं देवैस्त्वं न हि शक्यसे ।
स त्वं वैष्णवदेहेषु भ्रमसीत्यद्भुतं महत् ॥७५॥
क्षणमात्रमपि स्वामिंस्त्वयि तुष्टेन किं भवेत् ।
स त्वं वैष्णवसङ्गेन भ्रमसीत्यद्भुतं महत् ॥७६॥

ब्रह्मोवाच
के वैष्णवाः कैटभारे किं वा तेषाञ्च लक्षणम् ।
कथं ज्ञेयास्तु ते सर्वे तन्मे कथय केशव ॥

विष्णुरुवाच
वैष्णवानां लक्षणानि कल्पकोटिशतैरपि ।
सम्यक् वक्तुं न शक्नोमि संक्षेपाच्छृणु सत्तम ॥८०॥
संसारो वैष्णवाधीनो देवा वैष्णवपालिताः ।
अहञ्च वैष्णवाधीनस्तस्माच्छेष्ठाश्च वैष्णवाः ॥८१॥

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

क्षणमात्रमपि ब्रह्मन् विहाय वैष्णवं जनम् ।
तिष्ठामि नाऽहमन्यत्र वैष्णवा मम बान्धवाः ॥८२॥
कामक्रोधविहीना ये हिंसादम्भविवर्जिताः ।
लोभमोहविहीनाश्च ज्ञेयाश्च वैष्णवाजनाः ॥८३॥
अमत्सरा दयायुक्ताः सर्वभूतहितैषिणः ।
सत्योक्तिभाषणाश्चैव विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥८४॥
धर्मोपदेशिनश्चैव धर्माचारधरास्तथा ।
गुरुशुश्रूषवश्चैव विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥८५॥
कुर्वन्ति पूजामतिथेर्वेदविद्याविशारदाः ।
नपुंसकाः परस्त्रीषु ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥८६॥
एकादशीव्रतं ये च भक्तिभावेन कुर्वते ।
गायन्ति मम नामानि ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥८७॥
देवायतनकर्त्तारस्तुलसीमाल्यधारकाः ।
पद्माक्षधारिणो ये च ज्ञेयाश्च वैष्णवा ध्रुवम् ॥८८॥
शङ्खचक्रधनुर्बाणैरङ्कितानि ममायुधैः ।
ब्रह्मन् येषां शरीराणि ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥८९॥
मत्पादसलिलैर्येषां सिक्तानि मस्तकानि च ।
मम नैवेद्यमश्नन्ति ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥
वैष्णवेषु गुणाः सर्वे दोषलेशो न विद्यते ।
तस्माच्चतुर्मुख त्वञ्च वैष्णवो भव साम्प्रतम् ॥
बहुना च किमुक्तेन भाषिते च पुनः पुनः ।
ममार्चां ये च कुर्वन्ति विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥
वैष्णवाङ्घ्रिजलं यस्तु समस्तपातकापहम् ।
वहत्स्वशिरसा भक्त्या गङ्गा स्नानेन तस्य किम् ॥
स्कन्दपुराणे नागरखण्डे अ. १००।४८
साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ।
कालेन फलते तीर्थं सद्यस्साधुसमागमः ॥

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

भविष्यपुराणे

सतां पादरजोच्छिष्टे यदि श्रद्धान्वितो भवेत् ।
भक्षणे प्रेमभक्तिश्च लभते नात्र संशयः ॥

काशीखण्डे

वैष्णवोच्छिष्टशेषोपि पितृणां च दिवौकसाम् ।
सर्वेषां भूसुरादीनां दुर्लभं कल्मषापहम् ॥
ब्रह्महत्यासहस्राणि स्त्रीहत्याशतानि च ।
तस्य पापं क्षयं याति वैष्णवोच्छिष्टभोजनात् ॥

आदिपुराणे अर्जुनं प्रति श्रीकृष्णस्योक्तिः

वैष्णवान् भज कौन्तेय मा भजस्वान्यदेवताः ।
पुनन्ति वैष्णवाः सर्वे सर्वदेवमिदं जगत् ॥

भागवते स्कन्धे ९।४

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ! ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥६३॥
साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यं ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥६८॥

आदिपुराणे अर्जुनं प्रति श्रीकृष्णस्योक्तिः

अस्माकं बान्धवा भक्ता भक्तानां बान्धवा वयम् ।
अस्माकं गुरुवो भक्ता भक्तानां गुरुवो वयम् ॥
मद्भक्तो वल्लभो यस्य स मे वल्लभतां मतः ।
तत्परो वल्लभो नास्ति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥
यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां च न स्मरेत् ।
अहं स्मरामि तं भक्तं नयामि परमाङ्गतिम् ॥

पद्मपुराणे

महाप्रसादे गोविन्दे नामब्रह्मणि वैष्णवे ।
नाल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो ह्यत्र जायते ॥

भागवतनवमस्कन्धे अ. ४ दुर्वासाम्प्रति श्रीविष्णोरुक्तिः

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिदं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥६५॥

स्कन्दपुराणे

न ब्रह्मा न शिवाग्नीन्द्रा नाहमन्ये दिवौकसः ।
न शक्ता निग्रहं कर्तुं वैष्णवानां महात्मनाम् ॥
वैष्णवा विष्णुवत्पूज्या मम मान्या विशेषतः ।
तेषां कृतेऽवमाने तु विनाशो जायते ध्रुवम् ॥

बृद्धहारीतस्मृतौ अ. ८

भगवद्भक्तिदीप्ताग्निर्दग्धदुर्जातिकल्मषः ।
चाण्डालोऽपि बुधैः श्लाध्यो न तु पूज्यो ह्यवैष्णवः ॥
नश्यन्ति तामसाभावाः शूद्रस्य मयि भक्तितः ।

पद्मपुराणे

चाण्डालोऽपि मुनिश्रेष्ठो विष्णुभक्तिपरायणः ।
विष्णुभक्तिविहीनश्च यतिश्च श्वपचाधमः ॥

इतिहाससमुच्चये

न मे भक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः ।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम् ॥

जैमीनीय-महाभारते

न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृता ।
सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने ॥

पद्मपुराणे क्रियायोगसारे अ. १६।४, ब्रह्मवैवर्त्तपुराणे प्रकृतिखण्डे अ. ३६।३९

स कथं ब्राह्मणो यस्तु हरिभक्तिविवर्जितः ।
स कथं श्वपचो यस्तु भगवद्भक्तिमानसः ॥४॥
विष्णुसेवी च श्वपचो वंशानां कोटिमुद्धरेत् ।
हरेरभक्तो विप्रश्च स्वञ्च रक्षितुमक्षमः ॥३९॥

भागवते ७।९।१०,

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

मन्ये तदर्पितमनोवचने हितार्थप्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥

स्कन्दपुराणे वैष्णवखण्डे मार्गशीर्षमा. अ. ११।१७

विष्णुभक्ताश्च ये केचित् सर्वे वर्णा द्विजातयः ।
कथितं मम गार्ग्येण गौतमेन सुमन्तुना ॥

पराशरस्मृतेरुत्तरखण्डे अ. १०

षष्ठिवर्षसहस्राणि विष्णोराराधने फलम् ।
सकृद् वैष्णवपूजायां लभते नात्र संशयः ॥
वैष्णवो यद्गृहे भुंक्ते तस्य भुंक्ते हरिः स्वयम् ।
हरिर्यस्य गृहे भुंक्ते तस्य भुंक्ते जगत्त्रयम् ॥

तत्रैव कार्त्तिकमा. अ. ६।२६

निन्दां कुर्वन्ति ये मूढा वैष्णवानां महात्मनाम् ।
पतन्ति पितृभिः सार्द्धं महारौरवसंज्ञके ॥

पद्मपुराणे

गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा ।
पापं तापं तथा दैन्यं हरेत्साधुसमागमः ॥२॥

मोक्षाभिलाषी व्यक्तियों के परमकर्तव्य मोक्ष के कारण को बतलाते हैं **'तप्तेन'** इत्यादि। अग्नि तापित बाण तथा धनुष से दोनों भुजा के मूल में अङ्कन करना १-श्वेत श्रीरामरज मृत्तिका से मस्तकादिक में ऊर्ध्वपुण्ड्र करना २-रामदासादिक नाम ३-श्रीरामषडक्षरमन्त्र ४-तुलसीमाला ५-ये पाँच संस्कार ही सायुज्य मोक्ष का साधन है। यह मुक्ति चाहनेवालों के लिए परम कर्तव्य है। प्रस्तुत पञ्चसंस्कारों में प्रत्येक की विशेष चर्चा अपेक्षित है तो भी तिलक के विषय में संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत है-

॥ श्रीवैष्णवतिलकमीमांसा ॥

भारतीय संस्कृति वेदविहित सत्कर्म प्रधान है नित्य नैमित्तिक एवं काम्य कर्मों के भेद से उनके तीन प्रकार हैं किसी भी कर्मानुष्ठान में प्रथम तिलक करने का विधान शास्त्रों में उपलब्ध होता है-

कर्मादौ तिलकं कुर्याद्रूपं तद्वैष्णवं परम् ।
गोप्रदानं तपोहोमस्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।

Scanned by CamScanner
ankurnagpal108@gmail.com

भस्मीभवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्ड्रं विनाकृतम् ।

यह ब्रह्म पुराण का वचन है ब्रह्माण्ड पुराण में भी इसीप्रकार का वचन है। संक्षिप्त तात्पर्य यह कि कर्म के आदि में तिलक लगाना चाहिये उसके विना गोदानं तप हवन स्वाध्याय पितृतर्पण आदि सभी कर्म ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक किये विना किये जांय तो वे सव भस्म हो जाते हैं यानी निरर्थक हो जाते हैं । पूर्वाचार्यों से संग्रहित ग्रन्थों में यजुर्वेद हिरण्यकेशी शाखा का निम्न वचन प्राप्त होता है-

हरेः पादाकृतिमात्मनिधारयति यः स परस्य प्रियो भवति स पुण्यवान् मध्ये श्रियमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स मुक्तिभाग्भवतीति ।

जो साधक श्रीरामरज से श्रीहरि के श्रीचरणाकृति वाला विच में श्रीवाला ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करता है वह पुण्यशाली सायुज्य मुक्ति का भागी होता है। स्कन्दपुराण में वचन है-

ऊर्ध्वपुण्ड्रो मृदाशुभ्रो ललाटे यस्य दश्यते ।
चाण्डालोपिविशुद्धात्मा याति ब्रह्मसनातनम् ॥

यानी जिस किसी के भी ललाट में सफेद श्रीरामरज का ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक दिखाई दे तो वह यदि चाण्डाल भी हो तो भी ऐसा विशुद्ध आत्मा जीव अन्त में सनातन ब्रह्मधाम में जाता है । हारीतस्मृति का वचन है-

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्तु सन्ध्याकर्मसमाचरेत् ।
तत्सर्वंराक्षसैर्नीतं नरकं स च गच्छति ॥

जो साधक ऊर्ध्वपुण्ड्र के विना सन्ध्या आदि कर्मों को करता है वह सब राक्षस लोग ले जाते हैं एवं कर्ता नरक में भी जाता है । एवं श्रीपाराशर वचन है-

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्य श्मशानसदृशं मुखम् ।
अवलोक्य मुखं तस्य ह्यादित्यमवलोकयेत् ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र रहित व्यक्ति का मुख श्मशान जैसा होता है उसका मुख देखकर प्रायश्चित्त हेतु सूर्यदेव का दर्शन करें । सामान्यतः चारों वर्णों के लिये निम्न प्रकार का तिलक विधान ब्रह्मपुराण में प्राप्त होता है-

ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजः कुर्यात् क्षत्रियस्तु त्रिपुण्ड्रकम् ।
अर्ध्यचन्द्रं तु वैश्यस्तु वर्तुलं शूद्रजातिषु ॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

ऊर्ध्वपुण्ड्रन्तु सर्वेषां न निषिद्धं कदाचन ।
धारयेयुः क्षत्रियाद्या विष्णुभक्ता भवन्ति ये ॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदाकुर्यात् त्रिपुण्ड्रंभस्मना सदा ।
तिलकं वै द्विजः कुर्याच्चन्दनेन यदृच्छया ॥

द्विज ऊर्ध्वपुण्ड्र करे क्षत्रिय त्रिपुण्ड्र करे वैश्य अर्धचन्द्राकार करे शूद्रजाति गोल तिलक करे पर सदाचार्य संदीक्षित सर्वव्यापक विष्णु श्रीरामभक्तों को तो सर्वदा सभी वर्णों को ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करना चाहिये इसका निषेध किसी शास्त्र ने नहीं किया है । ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक मृद्-श्रीरामरज से करना चाहिये भस्म से त्रिपुण्ड्र करे चन्दन से यानी भगवदर्पित चन्दन से ऊर्ध्वपुण्ड्र या त्रिपुण्ड्र दोनों कर सकते हैं पर द्विजों को अनिवार्य रूपसे तिलक करना ही चाहिये । तिलक की संख्या कितनी एवं कहां कहां धारण करना तथा मन्त्रों के विषय में अन्य प्रबन्ध में प्रकाश डालेंगे अन्य सत् शास्त्रों के परिप्रेक्ष में यहाँ तो अतिसंक्षिप्त दिग्दर्शन मात्र है ।

स्कन्धपुराण **वैष्णव खण्ड मार्गशीर्ष माहात्म्य २।१९ एवं पद्मपुराण उत्तर खण्ड अध्याय २२५।४५** के अनुसार-

ललाट उदरे चाथ वक्षसि कण्ठकूवरे ।
कुक्ष्योर्बाह्वोः स्कन्दयोश्च पृष्ठे त्रिकेच वैशिरः ।

यानी ललाट १ नाभी २ हृदय ३ कण्ठ ४ दक्षिण कुक्षी ५ दक्षिणबाहु ६ दक्षिणस्कन्ध ७ वामकुक्षी ८ वामबाहु ९ वामस्कन्ध १० कटिपृष्ठ ११ ककुद १२ इन बारह स्थानों पर तिलक लगाना चाहिये । यदि द्वादश तिलक न भी करते हों तो भी तिलक हेतु प्रथम गणित ललाट में तो नियत रूपसे प्रतिदिन तिलक करना ही चाहिये । उन बारह स्थानों में किन किन देवों का ध्यान करते हुये तिलक करना वह आगे के मन्त्रों से बताते हैं क्योंकि प्रत्येक तिलक या स्थान के अधिष्ठातृदेव अलग अलग होते हैं-

ललाटे केशवं ध्यायेन्नारयणमथोदरे ।
वक्षः स्थले माधवं च गोविन्दं कण्ठकूवरे ॥
विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ तद्बाहौ मधुसूदनम् ।
त्रिविक्रमं कन्धारायां वामनं वामपार्श्वके ॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

ankurnagpal108@gmail.com
Scanned by CamScanner

श्रीधरं बाहुके वामे हृषिकेशं तु कन्धरे ।
पृष्ठे तु पद्मनाभं च त्रिके दामोदरं न्यसेत् ॥
तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवं तु मूर्धनि ।

अर्थात् ॐ केशवाय नमः वोलकर उनका ध्यान करते हुये ललाट में तिलक करे इसीप्रकार ॐ नारायणाय नमः से नाभी में ॐ माधवाय नमः से हृदय में ॐ गोविन्दाय नमः से कण्ठ में ॐ विष्णवे नमः से दक्षिणकुक्षी में ॐ मधुसूदनाय नमः से दक्षिणबाहु में ॐ त्रिविक्रमाय नमः से दक्षिणस्कन्ध में ॐ वामनाय नमः से वामकुक्षी में ॐ श्रीधराय नमः से वामबाहु में ॐ हृषिकेशाय नमः से वाम स्कन्ध में ॐ पद्मनाभाय नमः से कटिपृष्ठ में ॐ दामोदराय नमः से ककुद-गर्दन के पीछे भाग में एवं हाथ को धोये जल से ॐ वासुदेवाय नमः वोलकर मूर्धा में ।

तिलक के रंग के विषय में निम्न प्रकार से लिखा है-

श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं तथा ।
श्रीकरं पीतमित्याहुः श्वेतमोक्षकरं शुभम् ॥

श्याम तिलक शान्तिप्रद कहा जाता है रक्त वशकारक एवं पीत श्रीकर तथा श्वेत मोक्ष कर है अतः सायुज्यमुक्ति की कामनावाले साधक श्रीवैष्णवों को शुभ सूचक श्वेत श्रीरामरज से ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करना चाहिये ।

तिलक का आकार-प्रकार के विषय में उल्लेख है-

एकान्तिनो महाभागाः सर्वलोकहितेरताः ।
सान्तरालं प्रकुर्वन्ति पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम् ॥
मध्ये छिद्रेण संयुक्तमेतद्धिहरिमन्दिरम् ।
उर्ध्वं सौम्यमृजुं सूक्ष्मं सुपार्श्वं सुमनोहरम् ।
निरन्तरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः ।
स हि तत्र स्थितं लक्ष्म्या सह माञ्च व्यपोहति ॥
अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु ये कुर्वन्ति द्विजाधमाः ।
तैर्ललाटे शुनः पादं निक्षिप्तं वै न संशयः ॥
तस्माच्छिद्रान्वितं पुण्ड्रं महच्छिद्रं शुभान्वितम् ।
धारयेद्ब्राह्मणो नित्यं हरिसालोक्यसिद्धये ॥

यानी सभी लोकों के हित में नियत रूपसे लगे पुण्यशाली लोग श्रीहरि के श्रीचरणाकृतिवाला अन्तराल मध्य में खालीवाला ऊर्ध्वपुण्ड्र करते हैं। मनोहर सीधा दोनों भाग बराबरवाला सूक्ष्म समानाकृति चित्ताकर्षक बीच में समान छिद्रवाला ऊर्ध्वपुण्ड्र निश्चयरूपसे श्रीहरिजी का मन्दिर है। श्रीहरिजी कहते हैं-जो द्विजाधम बीच में छिद्र विना का ऊर्ध्वपुण्ड्र करता है वह पुण्ड्र में स्थित लक्ष्मीजी के साथ मुझ को भी दूर कर देता है। जो द्विजाधम बीच में छिद्र विना का ऊर्ध्वपुण्ड्र करते हैं उनलोगों ने अपने ललाट में श्व-कुत्ते का पैर रख लिया है इसमें कोई संशय नहीं है। इसलिये शुभसूचक बडे छिद्र से युक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र को श्रीहरिजी सर्व पापहारक श्रीरामजी की सायुज्य प्राप्ति हेतु सर्वदा ब्राह्मणों-श्रीवैष्णवों को शास्त्रानुसार धारण करना चाहिये। तिलक के विच में श्री निम्न मन्त्रों से लगाना चाहिये-

श्रीदेवीप्रथमं नाम द्वितीयममृतोद्भावा।
तृतीयं कमला प्रोक्ता चतुर्थं चन्द्रशोभिता॥
पञ्चमं तु वरारोहा षष्ठं तु हरिवल्लभा।
सप्तमं विष्णुपत्नी स्यादष्टमं वैष्णवी तथा॥
नवमं शार्ङ्गिणी प्रोक्ता देवदेवी दशैव च।
एकादशं तु लक्ष्मीस्याद् द्वादशं सर्वसुन्दरी॥
एवं ध्यात्वान्तरालेषु हरिद्रां धारयेच्छियम्।

यानी ॐ श्रियै नमः १ ॐ अमृतोद्भवायै नमः २ ॐ कमलायै नमः ३ ॐ चन्द्रशोभितायै नमः ४ ॐ वरारोहायै नमः ५ ॐ हरिवल्लभायै नमः ६ ॐ विष्णु पत्न्यै नमः ७ ॐ वैष्णव्यै नमः ८ ॐ शार्ङ्गिण्यै नमः ९ ॐ देवदेव्यै नमः १० ॐ लक्ष्म्यै नमः ११ ॐ सर्वसुन्दर्यै नमः १२ इसप्रकार वोलते हुये वीच में श्री का धारण करे।

तिलक करने हेतु निम्न अङ्गुलियों का विधान शास्त्र में मिलता है-

अनामिका शान्तिदोक्ता मध्यमायुष्करीभवेत्।
अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तस्तर्जनी मोक्षदायिनी॥

अनामिका शान्ति देनेवाली मध्यमा आयुदेनेवाली अंगुठा पुष्टिकारक एवं तर्जनी मोक्ष देनेवाली हैं।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

तिलक का स्वरूप आकृति कैसी हो या है इस विषय में शास्त्रों में विशद वर्णन प्राप्त होता है यहाँ श्रीमद्वाल्मीकिसंहिता के परिप्रेक्ष में श्रीवैष्णवीय तिलक का स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है संक्षेप रूपसे-

ऋषियों की सभा में महर्षि श्रीवाल्मीकिजी के साथ श्रीवैष्णवीय तत्त्वनिरूपणात्मक विस्तृत निर्णयात्मक चर्चा हुई उस श्रीमद्वाल्मीकिसंहिता के चौथे अध्याय के १५वें श्लोक से ३६वें तक तिलक विषय में निर्णायक चर्चा हुई उन्हीं २२ श्लोकों के आदर्श में निम्न स्वरूप प्रस्तुत है-

रमन्ते योगिनो यस्मिन् स रामः परिकीर्तितः ।
परिवेष्ट्य स्थितः सर्वं सैव विष्णुः समीरितः ॥

जिन सर्वेश्वर परब्रह्म श्रीरामजी में योगिजन रमण करते हैं वह तत्त्व श्रीराम इस नाम से वेद श्रीमद्रामायण आदि शास्त्रों में कीर्तित-वर्णित है सम्पूर्ण चराचर को परिवेष्टित करते रहते हैं अतः उन्हीं श्रीरामजी को विष्णु इस नाम से शास्त्रों में कथन किया गया है ।

स एव भगवान् कृष्णो गोपी गोपानुरञ्जकः ।
तस्य विष्णो महाबाहोर्भक्तानां पुण्ड्रसंग्रहः ॥
उच्यते श्रूयतां सम्यक् सावधानेन चेतसा ।

वे ही सर्वेश्वर श्रीरामजी **'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः'** इस आगम वचनानुसार गोपी तथा गोपों को अनुरञ्जित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी के रूपमें अवतरित हुये उन महाबाहू श्रीरामजी के भक्तों का पुण्ड्र-तिलक के विषय में संग्रह रूपसे कहता हूँ उसे सावधानतया सुने ।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदा कार्यं विष्णुभक्तिपरायणैः ।
पातित्यमन्यथा प्राप्य रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

श्रीरामभक्तिपरायणों को सर्वदा ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करना चाहिए तिलक न करने पर पतित हो जाता है तथा रौरव नरक में जायगा ।

ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो विप्रो विष्णुध्यानपरायणः ।
वीतपापः स धर्मात्मा स्वर्गलोकं समश्नुते ।

ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करनेवाला विष्णु भक्ति-ध्यान में परायण विप्र पाप

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

रहित हो जाता है ऐसा धर्मात्मा स्वर्गलोक के सुखों को भोगता है ।

हरेः पादाकृतिं कुर्यात् मध्यछिद्रसमन्वितम् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं स्वमोक्षाय दुःखनाशाय सर्वथा ॥
आचम्यैवोर्ध्वपुण्ड्रं तु शुद्धया च मृदा सदा ।
कुर्याच्चाथान्तरालेषु हरिद्राधारणं तथा ।

तिलक करनेवाले को प्रथम आचमन करना चाहिये तव सदा शुद्ध मृत्तिका श्रीरामरज से ऊर्ध्वपुण्ड्र करके बीच में हरिद्रा-श्री का धारण करना चाहिये ।

रैवतकात् चित्रकूटाद्यादवाद्रेश्च वैष्णवाः ।
मृत्तिकाहरणं कुर्युरूर्ध्वपुण्ड्राय सर्वदा ।

ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक हेतु सदा श्रीवैष्णवलोक रैवतक चित्रकूट एवं यादवाद्रि से मृत्तिका का आहरण-संग्रह करें ।

गङ्गायाः सूर्यकन्यायाः सरय्वा वा मृदा सदा ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं शुभं कुर्युर्वैष्णवा धर्मरक्षकाः ।

अथवा गङ्गा जमना या सरयु के शुद्ध मृत्तिका से धर्म के रक्षक श्रीवैष्णवों को शुभदायक ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक को सदा करना चाहिये ।

पूर्वं सिंहासनं कुर्युस्ततः पार्श्वद्वयं पुनः ।
ततःपश्चाच्च तन्मध्ये लिखेयुः सुन्दरीं श्रियम् ।

तिलक करते प्रथम सिंहासन स्थापित करे तव दो पार्श्व की ऊर्ध्वरेखा उसके वाद बीच में शोभा-वर्धक श्री का धारण करें ।

रजन्याश्रियमालिख्य मृदावापि च शुक्लया ।
वैष्णवो मुक्तिमाप्नोति सर्वकल्मषवर्जितः ।

दोनों ओर श्रीरामरज से ऊर्ध्वरेखा करने के वाद बीच में रजनी-हल्दी से तैयार रक्त श्री अथवा शुक्ल मृत्तिका-श्रीरामरज से ही ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक रक्त श्री या शुक्ल श्री करनेवाले सभी पापों से रहित श्रीवैष्णव सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है ।

卐 ऋषय ऊचुः 卐

भगवंस्त्वद्वचः श्रुत्वाऽभवामश्छिन्न संशयाः ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य भेदोऽस्य स्याद्यदीह तमप्यलम् ।
श्रोतुमिच्छाम आख्याहि सर्वसामर्थ्यवानसि (वन्मुने)

महर्षि श्रीवाल्मीकीजी का पूर्वोक्त विवेचन सुन कर ऋषियों ने निवेदन किया भगवन् ! तिलक विषयक आपकी तात्विक वाणी सुनकर हमसब ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक के विषय में सन्देह रहित हो गये हैं । मुनीश्वर ! आप से निरूपित ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक का कोई भेद हो तो कृपया उसे भी निरूपित करें आप उसके वर्णन करने में पूर्ण समर्थ हैं हमसब उस भेद को भी आपसे ही सुनना चाहते हैं ।

卐 श्रीवाल्मीकिरुवाच 卐

एकदा सुखमासीनं वैकुण्ठे च रघूत्तमम् ।
वायुसुनूर्महातेजा ब्रह्मचारिजितेन्द्रियः ।

मुनियों के तिलक भेद सम्बन्धी प्रश्न सुनकर महर्षि श्रीवाल्मीकीजी वोले महर्षियो ! एक समय में रघुकुल शिरोमणि श्रीरामजी वैकुण्ठ में सुखपूर्वक विराज मान थे उस समय में जितेन्द्रिय महान् तेजस्वी ब्रह्मचारी वायुनन्दन श्रीहनुमानजी ने श्रीरामजी से निम्न प्रकार से-

एतादृशान् बहून् प्रश्नान् पप्रच्छ (चकार) कपि-कुञ्जरः ।
श्रीरामस्तोषयामास तं तथाऽहं तथर्षयः ।
सर्वं वदामि युष्मभ्यं शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ।
तच्छ्रुत्वा छिन्नसन्देहा यूयं तेन भविष्यथ ।

आपलोगों के जैसे ही उन कपिश्रेष्ठ ने बहुत प्रश्न किये श्रीरामजी ने सभी प्रश्नों का यथार्थ उत्तर से श्रीहनुमानजी को सन्तुष्ट किया ऋषिश्वरो ! मैं भी उन्हीं उत्तरों को आप सवों को यथार्थ रूपसे कहता हूँ मुनि श्रेष्ठो ! आपसब सुनें उन श्रीरामजी का उत्तर को सुनकर आपसव भी सन्देह रहित हो जायेंगे ।

卐 भगवच्छ्रीरामवचनं श्रीहनूमन्तं प्रति 卐

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य भेदास्तु बहवः सन्ति शाश्वताः ।
तानहं ते वदिष्यामि श्रूयतां (शृणुत्वं) कपि कुञ्जर ? ।

सर्वेश्वर श्रीरामजी ने श्रीहनुमानजी से कहा-हे कपिश्रेष्ठ श्रीहनुमानजी ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक के भेद तो बहुत हैं एवं वे शाश्वत यानी अनादि हैं उन भेदों को तुम्हारे

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

हेतु-सर्वजन सुलभ ज्ञानार्थ कहता हूँ उसे सुनो ।

मद्भक्ताद्विविधाः प्रोक्ताः शुद्धसत्वः सुबुद्धयः ।
मामेव केवलं लोके भजन्ते जानकीं विना ।

मेरे भक्त दो प्रकार के हैं एक शुद्धसत्व दूसरे सुबुद्धि प्रथम शुद्धसत्व भक्त श्रीजानकीजी के विना ही केवल मेरा भजन करते हैं ।

जानकीसहितं मां तु भजन्ते सर्वदाऽपरे ।
एतेष्वपि च केचित्तु भक्तिमन्तोऽधिकं मयि ।

दूसरे उपासकवर्ग श्रीसीताजी के साथ मेरी सर्वदा उपासना करते हैं यानी युगल स्वरूप की उपासना करते हैं । इन उपासकों में भी कोई मुझमें अधिक दृढ भक्ति भाववाले होते हैं ।

जानक्यामेव चान्येषां दृढा भक्तिः प्रजायते ।
मदनुरागिणोभक्ता धारयन्ति न च श्रियम् ।

कितने ही अन्य साधकवर्ग की श्रीजानकीजी में ही दृढा भक्ति होती है । कितने ही मुझमें विशेष अनुरागवाले साधकवर्ग श्री का धारण नहीं करते हैं अर्थात् समानान्तर श्रीरामरज की ऊर्ध्वरेखा मात्र सिंहासन के साथ तिलक करते हैं पर बीच में श्री का धारण नहीं करते हैं ।

सीताभक्ताः प्रकुर्वन्ति मध्ये विन्दुं श्रियं शुभाम् ।
येषां सदाऽऽवयोरेव भक्तिर्भवति वै समा ।
ते शुक्लां रक्तवर्णाञ्च दीर्घां विदधाति श्रियम् ।

जिन साधकवर्ग की श्रीसीताजी में विशेष भक्ति होती है वे श्रीरामरज की समान ऊर्ध्वरेखा के बीच में श्रीरामरज की ही वर्तुलशुभा श्री का धारण करते हैं। जिन साधकों की समान रूपसे श्रीसीताजी तथा मुझ में दृढा भक्तिभावना होती है वे साधनापरायण लोग श्रीराम चरणरज की सिंहासन के साथ समानान्तर ऊर्ध्वरेखा तिलक के बीच में समानान्तर ऊर्ध्वरेखा दीर्घाकार शुक्लवर्णा-श्रीरामचरणरज की या रक्तवर्णा हरिद्रा निर्मित श्री को धारण करते हैं ।

कृष्णरूपधरं मां ये वैष्णवाः समुपासते ।
ते कृष्णं चापि रक्तं चाप्यूर्ध्वपुण्ड्रं सविन्दुकम् ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

कुर्वन्ति च महाभागा भक्तिभावसमन्विताः ।

जो महाभाग श्रीरामचरणानुरागी श्रीकृष्णरूप धारक मेरी प्रेम से उपासना करते हैं ऐसे श्रीवैष्णवलोग विन्दु के साथ कृष्ण अथवा रक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करते हैं।

श्रीमद्वाल्मीकिसंहिता के इस विवेचन से यह अतिस्पष्ट हो जाता है कि श्रीवैष्णव-श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव में तिलक स्वरूप के चार प्रकार हैं रक्त श्री शुक्ल श्री गुप्त श्री एवं विन्दु श्री ये चारों ही शाश्वत अनादि हैं जिनका उपदेश दिव्यधाम श्रीसाकेत में सर्वेश्वर श्रीरामजी ने दिव्य-नित्यपार्षद श्रीहनुमानजी को दिया है। जैसे श्रीसम्प्रदाय की परम्परा का उपदेश स्वयं सर्वेश्वर श्रीरामजी ने सर्वेश्वरी श्रीसीताजी को महामन्त्रोपदेश देकर प्रवर्तित किया वैसे ही स्वयं श्रीहनुमानजी को तिलक स्वरूप का उपदेश देकर किया है अतः ये दोनों तत्त्व अनादि हैं। जैसे युग धर्म किं वा कार्यकलापों से श्रीसम्प्रदायस्वरूप के मन्दप्रायः होने पर स्वयं सर्वेश्वर श्रीरामजी ने ही **'रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले'** इस आगम वचनानुसार आनन्दभाष्य कार जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी के स्वरूप में ४४०० कलिकाल यानी १३५६ विक्रम में अवतार लेकर स्वधर्म का संवर्धन विशद प्रचार-प्रसार किया तथैव तिलक स्वरूप के प्रचार-प्रसार के मन्दप्रायः होने पर आनन्दभाष्यकारजी के उत्तरवर्त्ती आचार्यों ने उन उन तिलक स्वरूप को विशद प्रचार-प्रसार एवं प्रवर्धन किये अतः आनन्दभाष्यकारजी के उत्तरवर्त्ती आचार्यों ने तिलकस्वरूप का प्रवर्तन किये कहना श्रीसम्प्रदायीय रहस्य किंवा रहस्य ग्रन्थों से अनभिज्ञ जनों की वार्ता मात्र है। ध्यान रहे **प्रवर्तक** एवं **प्रवर्धक** में महान् अन्तर ही नहीं विरोध भी है पूर्व से विद्यमान वस्तु का सदुपदेश द्वारा विस्तृत प्रचारक प्रसारक को प्रवर्धक कहते हैं प्रथम व्यवहार में अदृष्ट पदार्थ का सत्पात्र में उपदेश द्वारा दृष्टरूप प्रदान करना प्रवर्तन है। तो प्रकृत में व्यवहार में अदृष्ट चारों तिलक स्वरूपों का सर्वेश्वर श्रीरामजी ने श्रीहनुमानजी को उपदेश देकर प्रवर्तन किये तदनन्तर उत्तरवर्त्ती आचार्यों श्रीयुत आनन्दभाष्यकारजी श्रीअनुभवानन्दाचार्यजी श्रीतनतुलसीदास-चतुर्भुजाचार्यजी श्रीरामप्रसादाचार्यजी प्रभृतियों ने प्रवर्धन किये ।

अतः जैसे श्रीसम्प्रदाय के विशेष प्रचारक प्रसारक प्रवर्धक होने से आनन्द भाष्यकारजी के नाम से श्रीरामानन्दसम्प्रदाय लोक किंवा उत्तरकालिक इतिहास में

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

व्यवहृत होने लगा तथैव उन उन तिलकस्वरूप का उन्हीं आचार्यों के नाम से व्यवहार होने लगा प्रचारक प्रसारक या प्रवर्धक के नाते ॥२॥

यतेन्द्रियः शुचिः शुद्धवेशधृक् सुकुलोद्भवः ।
सदाचारपरोनम्रः शास्त्रज्ञो देशना पटुः ॥३॥

पूर्वश्लोकेन पञ्चसंस्कारस्य साक्षात् मोक्षसाधनत्वं कथितम् प्राप्तसंस्कारो हि झटित्येव संसारपरित्यागलक्षणं निरतिशयानन्दरूपं सायुज्यमोक्षमवाप्नोति ते इमे पञ्चसंकारा गुरुं विना नस्युरिति किदृशो गुरुः किं स्वरूपश्चेत्यादिगुरुलक्षणं प्रवक्तुमुपक्रमते यतेन्द्रियः शुचिः इत्यादि । **तत्र यतेन्द्रियः बाह्यं चक्षुरादिकमान्तरं मनः यतं वंशीकृतं येन स यतेन्द्रियः अर्थात् निगृहीतेन्द्रियत्वं गुरोर्लक्षणम् तथा शुचिर्बाह्याभ्यन्तरशौचाचारसमन्वितः 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदा इतिवचनात् । तथा शुद्धवेशस्य धारको भवेत् शास्त्रान्वित्तवेशयुक्त इत्यर्थः । तथा 'सुकुलोद्भवः' ब्राह्मणकुले जातो भवेत् द्विजातिकुले वा एतावता जन्मजातस्या सच्छूद्रस्य च निराशः विनम्रो भवेत् नतूद्धतो गुरुर्भवेत् तथा साङ्गवेदादिशास्त्र ज्ञानवान् भवेत् । एवं 'देशनापटुः देशनायां शिष्याणामुपदेशदाने चतुरोभवेत् एतादृशगुणविशिष्टो ब्राह्मणो विद्वानुपदेशको गुरुर्भवेन्नान्य इति भावः ॥३॥**

शास्त्र कथित पञ्चसंस्कार मोक्ष का साधन है ऐसा पूर्व दो श्लोक द्वारा बताया है । और यह संस्कार गुरु साध्य है तो कैसा गुरु हो ? उसका लक्षण क्या है ? इत्यादि बात को समझाने के लिए कहते हैं-'**यतेन्द्रियः**' इत्यादि । जो बाह्य तथा आन्तर इन्द्रिय पर जय को प्राप्त किया हो, शरीरादि से पवित्र हो, शुद्धसादा वेष को अर्थात् साधु के उचित शुभ्र काषाय वेष का धारण करता हो, ब्राह्मणादिक विशिष्ट कुल में समुत्पन्न हो, साधुओं के आचार विचार में तत्पर हो, विनम्र हो, नतु उद्धत हो, साङ्गवेदादि शास्त्र का ज्ञानवान् हो, और देशना उपदेश देने में चतुर हो, अर्थात् व्याख्याता हो एतादृश जो व्यक्ति हो उसे गुरु बनाना चाहिए ॥३॥

विरक्तधर्मनिरतो ध्यानाभ्यासी सुबुद्धिमान् ।
निग्रहेऽनुग्रहेचैव समर्थो देशिको मतः ॥४॥

यश्च सदाविरक्तोबाह्यरागरहितस्तथाधर्मनिरतो पूर्वाचार्यप्रतिपादितधर्मपा

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

लने तत्परो भवेत् तथा ध्यानस्याभ्यासशीलो भवेत् बुद्धिमान् देशकालाभिज्ञो भवेत् तथा निग्रहानुग्रहकरणे समर्थ एव देशिको भवेत् पूर्वोक्तगुणसम्पन्न एवाचार्यो भवेदितिभावः ॥४॥

जो व्यक्ति विरक्त धर्म में अर्थात् श्रीवैष्णवीय समस्त पूर्वाचार्य प्रवर्तित श्री वैष्णवमत का पालन करने में सर्वदा संलग्न हो और ध्यानाभ्यासी हो नतु विरक्त वेश विरोधि कार्य में निरत हो वेदाभ्यास करनेवाला हो बुद्धिमान देशकाल को समझ कर कार्य करनेवाला हो, और निग्रह अनुग्रह करने में सामर्थ्यवाला हो एतादृश व्यक्ति को ही आचार्य बनावें ॥४॥

हीनाङ्गो ह्यधिकाङ्गश्च कपटीकृष्णदन्तवान् ।
नेत्ररोगी च कुष्ठी च वावदूकश्च वामनः ॥५॥
व्यसनी बहुनिद्रश्च कुनखी बहुभोजनः ।
नेदृशोदेशिको योग्यो मुमुक्षोर्मोक्षसाधने ॥६॥

यादृशगुणयुक्त एवाचार्यो भवेदिति प्रदर्श्य यादृशावगुणयुक्तो नाचार्यपदे समुपविशेदिति दर्शयितुं श्लोकद्वयमुदाहरति 'हीनाङ्गोह्यधिकाङ्गश्चेत्यादि' हीनाङ्गो हीनं विकलं अङ्गं यस्य स हीनाङ्गविकलाङ्ग इत्यर्थस्तथा योऽधिकाङ्गोऽधिकाङ्गवान् भवेत् यश्च कपटी मायावी भवेत् कृष्णदन्तवान् दन्ताः कृष्णा यस्य भवेयुः । तथा नेत्ररोगवान् कुष्ठरोगवान् वावदूकोऽवितथं बहुवदनशीलः । वामनः ह्रस्वदेहवान् व्यसनी तमालपत्रादिव्यसनवान् प्रमाणाधिकः निद्राशीलः कुत्सित नखवान् तथा बहुभोजनः प्रमाणाधिकभोजनवान् बहुभोजनस्य 'अस्वर्ग्यलोक विद्विषम्' इत्यादिमनुवचनेन निषेधात् । मुमुक्षोर्मोक्षसाधने एतादृश उपरिप्रदर्शितदोषयुक्तो देशिको गुरुर्नयुक्तः । अर्थादेतादृशदोषयुक्तं गुरुं नैव कुर्याद्यत उपनिषदि 'अथ षण्डः पतितोऽङ्गविकलः स्त्रैणो वधिरोऽर्भको मूकः पाषण्डीश्वक्रीलिङ्गीवैखानसहरद्विजौभृतकाध्यापकः शिपिविष्टोऽनग्निकोवैराग्यवन्तोऽप्येते न संन्यासार्हाः संन्यस्ता यद्यपि महावाक्योपदेशे नाधिकारिणः' 'षण्डोऽथ विकलोऽप्यन्धोबालकश्चापि पातकी' नारदपरिव्राजकोपनिषद् ३।१-२। तथैव महामहोपाध्यायजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरघुवराचार्यचरणा आचार्यस्मृतौ-

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

नैवाधिकाङ्गसहितो न च व्यङ्गदेहो
नाचारहीनविविधाश्रमदत्तचित्तः ।
नोलम्पलो नच कदाचरणानुरक्तः
स्वाचार्यधुङ् नच नहि प्रमदानुरक्तः ॥२-१०॥
श्रद्धान्वितः कर्मपरायणश्च गुरौ प्रपत्यातिविशुद्धमानसः ।
निर्वृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविज्ञ आचार्यतां याति स वै विरक्तः ॥२-२१॥
इत्यादिरूपेणग्राह्याग्राह्यत्वतयातत्स्वरूपनिरूपणात् ॥५-६॥

जो अङ्ग विकल हो तथा अधिक अङ्गवाला हो, कपट माया करनेवाला मायावी हो, जिसका दाँत काला हो, नेत्ररोग से दूषित अर्थात् अक्ष्णाकाण अन्ध हो, द्वाविंशतिभेद खित्र कुष्ट रोगादि संक्रामक रोगवाला हो, तथा निरर्थक अधिक बोलने वाला वावदूक हो, वामन कद से छोटा हो, गाँजा बीडी भांग वगैरह व्यसनवान् हो प्रमाण में अधिक निद्राशील हो जिसका नख सडा हुआ हो और अधिक भोजन करनेवाला हो क्योंकि '**अस्वर्ग्यलोकविद्विष्टं**' इत्यादि मनुवचन से बहुभोजन का निषेध है। मुमुक्षुओं को मोक्ष साधन का उपदेश देने के लिए एतादृश आचार्य योग्य नहीं है। नारदपरिव्राजकोपनिषद् का मत है कि-षण्ड पतित अङ्ग विकल स्त्रैण वधिर अर्भक मूक पाखण्डी चक्री लिङ्गी वैखानस हरद्विज भृतकाध्यापक-नोकरी करनेवाला शिपि विष्ट अनग्निक तथा षण्ड विकल अन्धा बालक और पातकी यदि वैराग्यवाले हों तो भी विरक्त श्रीवैष्णवसंन्यास दीक्षा के अधिकारी नहीं हैं यदि किसी के वहाने प्रलोभन देकर दीक्षा ली गई हो तो भी ब्रह्मविद्या के उपदेश का यानी श्रीराममहामन्त्र के उपदेश का अधिकार उन्हें नहीं है।

महामहोपाध्याय जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरीजी ने आचार्यस्मृति में लिखा है-

लोक व्यवहार में प्रशस्त रूपसे दिखनेवाले अङ्गों से अधिक अङ्गवाले एवं कम अङ्गवाले को गुरु नहीं बनाना चाहिये एवं सदाचार से हीन लंपट निन्दित आचारवाला अपने पूर्वाचार्यों की निन्दा करनेवाला तथा प्रमदा के साथ रहनेवाले को कभी भी गुरु नहीं बनाना चाहिये अपना कल्याण चाहनेवालों को। क्योंकि उपनिषद् का वाक्य है देव एवं गुरु में समान भक्तिवाले सदाचारी गुरु का उपदेश

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

उपकार करनेवाला होता है अतः परमविरक्त आचार्य तथा शास्त्र में निष्ठावाले सत् पुरुष को ही गुरु बनाकर उनसे दीक्षा शिक्षा लेनी चाहिये जिस किसी लूले लंगडे अन्धे बहरे से नहीं । विशेष विचार अन्यत्र देखिये ॥५-६॥

श्रद्धान्वितो विशुद्धात्मा मेधावीविनयीपटुः ।
कुलीनः सच्चरित्रश्च बुद्धिमान् व्रततत्परः ॥७॥

गुरोर्लक्षणं समभिधाय ततः शिष्यलक्षणमभिधातुमुपक्रमते, अन्यथाऽवि नीतशिष्योपदेशे गुरोररण्यरोदनमेवापतेत्तत्राह श्लोकद्वयेन 'श्रद्धान्वित' इत्यादि। कीदृशः शिष्यः समुपदेष्टव्यः ? 'श्रद्धान्वितः गुरूपदिष्टवेदान्तवाक्येषु विश्वास एव श्रद्धा तया अन्वितः सर्वथा युक्तो भवेत् । तथा विशुद्धात्मा कपटमायादि परिवर्जितः मेधावी धारणाशक्तिमान्, विनयी विनयवान् पटुरर्थावधारणे समर्थः कुलीनः सत्कुलजातः सच्चरित्रः सदाचारवान् बुद्धिमान् व्रतकरणे समर्थः स-दोद्युक्तश्च एतादृशः शिष्यः कार्यः । उक्तसर्वगुणसम्पन्नताभाने उद्देश्यासिद्धिरिति भावः ॥७॥

जो श्रद्धा से युक्त हों अर्थात् गुरुवाक्य पर विश्वासवाला हो, पवित्र अन्तः करणवाला हो, प्रज्ञावान् विनयशील चतुर हो, सत्कुल में समुत्पन्न हो, जिसका चरित्र अच्छा हो, बुद्धिमान् तथा लोक व्यवहार में चतुर हो, एतादृश व्यक्ति शिष्य बनने का योग्य होता है ॥७॥

गुरुशुश्रूषणे शक्त आज्ञाकारी जितेन्द्रियः ।
अनुल्वणो भक्तिनिष्ठः शिष्यः कार्यस्तु दैशिकैः ॥८॥

एवं यो गुरोः शुश्रूषायां शक्तः सर्वथागुरुरतः यथोक्तम् 'यथा खनन्खनित्रेण नरोवार्यधिगच्छति । तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छतीति' स्मृतेर्गुरु शुश्रूषाया आवश्यकतया तत्करणे सर्वदैव प्रयत्नशीलः । तथा गुरोराज्ञाकारी, तदाज्ञयैवसर्वकार्यसम्पादकः, जितेन्द्रियः बाह्याभ्यन्तरेन्द्रियजयकारकः । अनुल्व णः सर्वथैव क्रोधादिरहितः भक्तिनिष्ठः भक्तौ निष्ठास्थितिर्यस्य तादृशः, गुरोरीश्व रस्य च भक्तौ सेवायां सर्वदा संलग्नः एतादृश उपर्युक्तक्रमेण प्रदर्शितः शिष्यो देशिकैराचार्यैः कर्त्तव्य इति शेषः ॥८॥

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

निम्न लिखित गुणों से युक्त पुरुष को ही आचार्य शिष्य बनावें नतु जिस किसी को शिष्य बनाने का लोभ तथा साहस करें। तथाहि जो गुरु शुश्रूषा गुरु तथा भगवान् की सेवा करने में शक्त समर्थ हो, तथा गुरु की आज्ञाकारी हो, अर्थात् गुरु के आज्ञा से कार्य करनेवाला हो, नतु स्वतन्त्र हो, तथा जितेन्द्रिय हो, अर्थात् जिसकी बाह्याभ्यन्तर इन्द्रिय के ऊपर विजय प्राप्त हो, अनुल्वण क्रोधादिक मानस विकार से अविकृत हो, अन्यथा क्रोधादिवश कदाचित् गुरु को भी अपमानित कर बैठे। तदुक्तं- **'क्रुद्धः पापं न कुर्यात्कः क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि। क्रुद्धः पुरुषया वाचा नरः साधूनपिक्षिपेत्'** तथा भक्तिनिष्ठ हो अर्थात् गुरु और परमेश्वर की सेवा करने में प्रयत्नशील रहता हो, एतादृश व्यक्ति को आचार्य शिष्य बनावें ॥८॥

परीक्ष्यशिष्यं समुपासकं गुरुर्वर्षं समभ्यर्च्य च वह्निदेवताम्।
चापादिभिर्हेतिवरैः सुतापितैर्दिने सुपुण्ये नियतः समङ्क्येत् ॥९॥

एवं गुरुशिष्ययोः स्वरूपं प्रतिपाद्य ततो गुरुस्तत्वोपदेष्टा आचार्यो हि शिष्यस्याज्ञानतमो निवर्तकः तदुक्तं-'गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निवर्तकः। अन्धकारविरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते' एतादृशलक्षणको गुरुः, शिष्यं शासन **योग्यं जिज्ञासुर्वर्षपूर्णं संवत्सरं यावत् समुपासकं निश्छलभावेन समुपासितगुरुं परीक्ष्यशिष्यस्वभावादीनां परीक्षणं कृत्वा तदुक्तं-**'उपासितगुरोर्वर्षं विष्णोर्दास्य मभीप्सतः। विहितः पञ्चसंस्कारा युक्तस्यैकान्त्यहेतव' इति। ततोवह्निदेवता षोडशोपचारैर्यथामिलितद्रव्येण समभ्यर्च्य वेदिं कृत्वा कुशकण्डिकादिनिर्माण पूर्वकमग्निं पूजयित्वा सुदीप्तसंस्कृतपूजितवह्नौ भगवतो रामस्यवाणधनुषी ताप- येत्, तथा तपयेत् यावतादाहयोग्यौ तौ भवेताम्, ततः सुतापितैर्हेतिवरैरायुधेषु श्रेष्ठैर्वाणादिभिः सुपुण्ये दिवसे श्रीरामनवम्यादिशुभतिथौ नियतः समाहितः सा वधानतया आचार्यः शिष्यं भुजमूले तापयेत्तदङ्कनं कुर्यात्, तच्चिह्नं स्थायी भवेच्चन्द्रचिह्नवत्। अयं च विधिर्विरक्तानां गृहस्थानां तु शीतलमुद्रैव दातव्या नतु तप्तमुद्रादातव्येति केचन वदन्ति। एतत्तत्वं यथासम्प्रदायज्ञातव्यतयान्यत्र वि चारयिष्ये ॥९॥

यथोक्त क्रम से मोक्षसाधन पञ्चसंस्कार के स्वरूप तथा गुरु शिष्यादि स्वरूपों का निर्वचन करके अनन्तर बाण धनुष के धारण करने के विधि को बतलाते हुए

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

कहते हैं **'परीक्ष्यशिष्यं समुपासकम्'** इत्यादि । अज्ञानरूप अन्धकार को विनाश करने वाले गुरु महाराज एक वर्षतक उपासना करनेवाले शिष्य की समीचीन रूपसे परीक्षा करके अग्नि देवता का समीचीनपूर्वक कुशकण्डिकादि द्वारा पूजन करके सर्व आयुधों में श्रेष्ठ जो भगवान् श्रीरामजी का धनुषबाणरूप जो आयुध प्रतिकृति है उन आयुधों को सुसंस्कृत अग्नि में तपावें, तदनन्तर सुतप्त उन धनुषबाण से श्रीराम नवमी प्रभृतिक पुण्यतिथियों में शिष्य के दोनों भुजा के मूल में सावधान होकर अङ्कित कर दिया जाय इसका विशेष विवरण अन्यत्र किया जायगा ॥९॥

सहोर्ध्वपुण्ड्रं सुमृदाश्रिया तथा रामादिदास्यान्वितनामकुर्यात् ।
मन्त्रं तथैवोपदिशेद्विधानतो मालाञ्चदद्यात् तुलसीसमुद्भवाम् ।१०।

हे सुरसुरानन्द ! भगवदायुधस्याङ्कनानन्तरं तेनैव विधिना सुमृदाशुभस्वच्छवर्णयुक्तमृत्तिकया श्रीरामचरणरजादिना श्रिया सहैव ऊर्ध्वं पुण्ड्रं शिष्यस्य मस्तकादौ कुर्यात् तथा श्रीरामादिदास्यान्तं रामदास हनुमानदास हरिदासादिनाम कुर्यात् । दासशब्दोऽत्र शरण, प्रपन्न, आनन्द, आचार्यादिपदानामुपलक्ष्यकः । अत श्रीरामशरणादिनाम्नापिभाव्यमितिदिक् । तथैव अङ्कनादिविधिवदेव विधानतः शास्त्रप्रतिपादितविधानानतिक्रमेण मन्त्रराजषडक्षरतारकमन्त्रं समुपदिशेत्, मन्त्रो पदेशं गुरुः कुर्यात् । तथा तुलसीकाष्ठसमुद्भवां तुलसीसम्पादितामेवमालां यथा विधिशिष्यकण्ठे परिधापयेत् । नतु काष्ठान्तरनिर्मितमालां प्रयच्छेत्, यथाधुना शिष्यलोलुपा अज्ञात्वैव यतस्ततः क्रयक्रीतां काष्ठान्तरनिर्मितामपि धापयन्ति तद्वत् किन्तु तुलसीमालेयमिति निश्चत्यैव दद्यात् । यदत्रान्यकाष्ठमाला धारणनिषेधः कृतः स श्रीवैष्णवविषयकः । विशेषस्त्वन्यत्र द्रष्टव्यः ॥१०॥

हे सुरसुरानन्द ! अङ्कनानन्तर आचार्य शास्त्रविधि के अनुसार शिष्य के मस्तकादि प्रदेश में सफेद मृत्तिका श्रीरामरज से श्री सहित ऊर्ध्वपुण्ड्र कर दे तथा शास्त्रानुसार रामदास हनुमानदास प्रभृतिक नामकरण करें । एवं विधानपूर्वक तुलसी कण्ठी प्रदान कर षडक्षर मन्त्रराज का उपदेश करें, अनन्तर तुलसीकाष्ठ निर्मित अष्टोत्तरशत प्रमाणक माला भी शिष्य को देवें ॥१०॥

एवं महान् भागवतः सुसंस्कृतो रामस्य भक्तिंपरमां प्रकुर्यात् ।

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

महेन्द्रनीलाश्मरुचेः कृपानिधेः श्रीजानकीवल्लभरावणारेः ।११।

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण कथितपञ्चसंस्कारैः सुसम्यक् संस्कृतः शिष्योधिकारी महान् भागवतो भगवतो रामस्य भक्तो जातः सन् श्रीजानकीवल्लभरावणारेः नीलाश्मरुचेः नीलमणिकान्तियुक्तस्य भगवतो रामचन्द्रस्य परमामनन्यां भक्तिं कुर्यात् । पञ्चसंस्कारप्राप्त्या भागवतः सम्पन्नो मुमुक्षुर्भगवतो रामस्यानन्यां भक्तिं कुर्यादिति ॥११॥

हे सुरसुरानन्द ! पूर्वकथित पञ्चसंस्कार से सुसंस्कृत अधिकारी शिष्य महा भागवत होकर के श्रेष्ठ नीलमणि की तरह श्यामल दयासमुद्र रावण के अरि श्रीविदेहजा श्रीसीताजी के वल्लभ उन से सर्वदा युक्त भगवान् श्रीरामजी की पराभक्ति तैलधारा की तरह स्मृति प्रवाहरूप परमभक्ति करें । अर्थात् भगवान् की सेवा में संलग्न हो जाय ॥११॥

उपाधिनिर्मुक्तमनेकभेदका भक्तिः समुक्तापरमात्मसेवनम् ।
अनन्यभावेन मुहुर्मुहुः सदा महर्षिभिस्तैः खलु तत्परत्वतः ॥१२॥

हे वत्स ! तत्परत्वेन तस्य भगवतो रामस्य परत्वेन अनन्यत्वेन उपाधि निर्मुक्तं कामनादिसर्वोपाधिरहितम् परमात्मसेवनम् परमात्मनः सर्वेश्वरस्य सेवनं भजनमेव महर्षिभिर्वाल्मीकिप्रभृतिमुनिश्रेष्ठैः अनेकभेदा अनेकप्रकारिका भगवतो रामस्य भक्तिः कथिताः । तदुक्तं नारदपाञ्चरात्रे 'सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् । हृषिकेणहृषिकेशसेवनं भक्तिरुच्यते' इति ।

एवं 'सर्वस्मादधिकस्नेहो भक्तिरित्युच्यते बुधैः' सेवैवमूर्ध्वं नयति साक्षात् कारयतिह्यजमिति । सेयं भक्तिः श्रवणादिभेदभिन्ना भगवत्सेवनरूपैवेति ज्ञेयम् ॥१२॥

हे सुरसुरानन्द अनन्य भाव से सर्वदेश सर्वकाल में निश्चयपूर्वक तत्पर भगवत् परक रहनेवाले श्रीवाल्मीकि पराशरादिक महर्षियों ने उपाधिभेद विनिर्मुक्त अर्थात् ममता, काम क्रोध और अहङ्कारादि से सर्वथा रहित परमात्मा श्रीरामचन्द्रजी की सेवा रूप जो भक्ति है तादृश भक्ति का अनेक प्रकार बतलाया है । अर्थात् श्रवण स्मरणादि आत्म समर्पणान्त अनेक भेद को बतलाया है वह सब भजन रूप ही है अतः

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com

सर्वतोभाव से श्रीरामसेवारत हो जावो ॥१२॥

सा तैलधारा समनित्यसम्स्मृतेः सन्तानरूपेशिपरानुरक्तिः ।
भक्तिःविवेकादिकसम्पजन्या तथा यमाद्यष्टसुबोधकाङ्गा ॥१३॥

'रामस्यभक्तिं परमां प्रकुर्यात्' इयं पूर्वश्लोककथितकायिकवाचिकस्तथा मानसिकपराभक्तेः स्वरूपं साधनञ्च वक्तुकामोपक्रमते 'सा तैलधारेत्यादि' ईशि परमात्मनि भगवति श्रीरामे विवेकादिकसम्पजन्या अर्थात् विवेकविमोकाभ्यास क्रियाकल्याणानवसादानुद्धर्षरूपसाधनसम्पभिर्जायमाना तथा यमाद्यनुष्ठानसुबो धकाङ्गा अर्थात् यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरूपाण्येवा ङ्गानि स्वसुखं बोधकानि यस्यास्तादृशी तैलधारयाः समायास्तुल्याया अर्थाद-विच्छिन्नायाः परमात्मनः श्रीरामस्य स्वरूपस्य सम्यक् स्मृतेर्विस्ताररूपाया अनुर क्तिरनुरागः प्रीतिः सैव पराभक्तिः तदत्रस्वयमेवाहुरानन्दभाष्यकाराः 'निर्णीत ए वायमर्थो भगवता बोधायनेन पूर्वपक्षोपन्यासपूर्वकप्रतिवचननिचयैः । तथाहि स कृत् प्रत्ययं कुर्यात् शब्दार्थस्य कृतत्वात् प्रयाजादिवत् (बो.वृ.) इत्यादिना पूर्व पक्षमुपन्यस्य समाहितम्-सिद्धं तूपासनशब्दात् (बो.वृ.) इति । वेदनमेवोपास नमित्य प्युक्तम्-वेदनमुपासनं स्यात्तद्विषये श्रवणात् (बो.वृ.) इति । उपासनं तु ध्रुवानुस्मृतिरूपमित्यभिहितम्-उपासनं स्याद् ध्रुवानुस्मृतिर्दर्शनान्निर्वचनाच्च (बो.वृ.) इति । सा च ध्रुवानुस्मृतिसाधनसम्पकादेवेत्युदीरितम् 'तल्लब्धिर्विवेकवि मोकाभ्यासक्रियाकल्याणानवसादानुद्धर्षेभ्यः सम्भवान्निर्वचनाच्च (बो.वृ.) इति । तत्र जात्याश्रयमित्तात् दुष्टादन्नात् कायशुद्धिर्विवेक इति । निर्वचनमत्र आ हारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवानुस्मृतिः (छा. ३।२६।२) इति । विमोकः कामानभिष्वङ्ग इति निर्वचनञ्चात्र उपासते पुरुषं ये ह्यकामाः (मु. ३।२।१) शान्त उपाशीत (छा. ३।१४।१) इत्यादि । आरम्भणसंशीलनं पुनः पुनरभ्यासः 'ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः (मु. ३।१।८) इति निर्वचनम् । पञ्चमहायज्ञाद्यनुष्ठानं शक्तितः क्रियेति । निर्वचनमत्र-तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन (बृ. ४।४।२२) इति । सत्यार्जवदयादानहिंसानभिध्याः कल्याणानि । 'सत्येन लभ्यस्तपशाह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानं ब्रह्मचर्येण नित्यम्' (मु. ३।१।५) इत्यादिनिर्वचनम् । देशका

Scanned by CamScanner ankurnagpal108@gmail.com